उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

निर्देशन एवं परामर्श का परिचय (एमएपीएसवाई-613)

Introduction of guidance and Counseling (MAPSY- 613)

अनुक्रमणिका

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1	निर्देशन: संप्रत्यय, सिद्धान्त, मान्यताएँ, मुद्दे एवं समस्याएँ, निर्देशन की आवश्यकता, कार्य-क्षेत्र एवं महत्व, निर्देशन के प्रकार (Guidance: Concept, Principles, Assumptions, Issues and Problems; Need, Scope and Significance of Guidance, Types of Guidance)	1-25
2.	निर्देशन एवं परामर्श में परामर्शदाता की भूमिका और एक अच्छे परामर्शदाता की विशेषताएँ (Role of Counselors in Guidance & Counseling and Characteristics of a Good Counselor)	26-33
३.	**परामर्श के सैद्धांतिक दृष्टिकोण, निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम की तर्कसंगता एवं उद्देश्य (Theoretical Approaches of Counseling, Rationalization and Purpose of Guidance & Counseling Programme)**	34-43
4.	**निर्देशन एंव परामर्श कार्यक्रम का आयोजन व मूल्यांकन और परामर्श में नैतिकता (Organizing and Evaluation of Guidance & Counseling Programme and Ethics in Counseling)**	44-62
5.	**निर्देशित, गैर निर्देशित एवं चयनात्मक (सारग्राही) परामर्श; बाल संरक्षण और बाल अधिकार परामर्श (Directive, Non-directive and Eclectic Counseling; Child Protection and Child right Counseling)**	63-80
6.	**परामर्श:- समाधान-केंद्रित, एकीकृत, एच आई वी /एड्स और लत/चिंता (Counseling:- Solution-focused, Integrated, HIV/AIDS and Addiction/Anxiety)**	81-103

7.	**अवसाद, व्यक्तित्व और लिंग पहचान विकृति के लिए संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन (तनाव संरोपण, आत्म-अनुदेशात्मक, आत्म प्रबंधन, समस्या समाधान) (Cognitive Behavior Modification (Stress Inoculation, Self-Instructional, Self-management, Problem Solving) for Depression, Personality and Gender Identity Disorder)**	**104-123**

इकाई-1: निर्देशन: संप्रत्यय, सिद्धान्त एवं मान्यताएँ, मुद्दे एवं समस्याएँ, निर्देशन की आवश्यकताए, कार्य, क्षेत्र एवं महत्व, निर्देशन के प्रकार (Guidance: Concept, Principles, Assumptions, Issues and Problems; Need, Scope and Significance of Guidance, Types of Guidance)

इकाई संरचना:

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 निर्देशन का संप्रत्यय
1.3 सिद्धान्त
1.4 धारणाएँ
1.5 मुद्दे एवं समस्याएँ
1.6 निर्देशन की आवश्यकता
1.7 कार्यक्षेत्र एवं महत्व
1.8 निर्देशन के प्रकार
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.12 सन्दर्भ एवं ग्रन्थ सूची
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

मानव जीवन में परिवर्तन बहुत तीव्र गति से हो रहा है। संचार माध्यमों, आवागमन के साधनों, सूचना के द्रुत गति से आदान-प्रदान ने इक्कीसवीं सदी के व्यक्तियों में भौतिक दूरी को कम कर दिया है। इस परिप्रेक्ष्य में मानव के विकास की गति द्रुत हुई है तथा शिक्षा, व्यवसाय, रोजगार व उद्यमों के नूतन क्षितिज उभरे हैं। ऐसी स्थिति में मानव जीवन में विभिन्न अवस्थाओं पर, जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रायः सभी व्यक्तियों को अपने जीवन में विद्यमान अनेक विकल्पों में से कुछ एक का सोच-समझ कर चयन करने की आवश्यकता का अनुभव होता है।

विकल्प का चयन इस आधार पर किया जाना चाहिए कि चयनित मार्ग जीवन में सन्तुष्टि, समायोजन, विकास एवं स्वास्थ्य अर्जित करने की दिशा में सहायक सिद्ध हो। ऐसा करते समय व्यक्ति को अन्य लोगों से सहयोग लेने की आवश्यकता का अनुभव होता है।

ऐसी आवश्यकताएँ प्राचीन काल से विद्यमान रही हैं, किन्तु आधुनिक काल में जीवन की बढ़ती हुई जटिलताओं के कारण ऐसे बाहरी सहयोग की आवश्यकता अब और भी अधिक अनुभव की जा रही हैं जो कि बुद्धिमत्तापूर्ण चयन करने एवं उपयुक्त आत्मनिर्णय विकसित करने हेतु व्यक्ति को समर्थ बनाये, निर्देशन इस प्रक्रिया में सहायक होता है। हम यहाँ निर्देशन व परामर्श के संप्रत्यय, उसकी उपयोगिता व महत्व आदि को जानने का प्रयास करेंगे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

- निर्देशन को भलीभाँति समझ सकें।
- निर्देशन के सिद्धान्तों को जान सकें।
- निर्देशन के मुद्दे एवं समस्याओं से अवगत हो सकें।
- निर्देशन के महत्व को जान सकें।
- निर्देशन के विभिन्न प्रकारों को समझ सकें।

1.2 निर्देशन का संप्रत्यय

निर्देशन एक ऐसा सम्प्रत्य है जो कि न तो सरल है, न ही आसानी से समझे जाने योग्य है। एक सम्प्रत्यय के रूप में इसके अर्थ में विविधता, व्यापकता एवं गहराई है। निर्देशन किसी व्यक्ति द्वारा माँगे जाने पर अथवा व्यक्ति की आवश्यकता को ध्यान में रखकर न माँगे जाने पर भी स्वतः उपलब्ध कराई जाने वाली सहायता होती है जो व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की समस्याओं के समाधान हेतु समर्थ बनाती है।

निर्देशन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति को समस्या समाधान में व समायोजन करने में सहायता मिलती है। निर्देशन जीवन में उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिए व्यक्तिगत सहायता है। निर्देशन व्यक्ति के लिए समस्याओं का निराकरण एवं समाधान नहीं है, बल्कि व्यक्ति की सहायता द्वारा वह उसके अन्दर अन्तर्बुद्धि उत्पन्न करता है, जिससे वह स्वयं समस्याओं का समाधान प्राप्त कर पाने में समर्थ हो जाता है। निर्देशन एक क्रिया है जिसके अनुसार एक व्यक्ति को सहायता प्रदान की जाती है जिससे वह अपने निर्णय ले सके, निष्कर्ष निकाल

सके तथा अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सके। निर्देशन के माध्यम से व्यक्ति अपने व्यक्तित्व, अपनी क्षमता, योग्यता तथा मानसिक स्तर का ज्ञान प्राप्त करता है। निर्देशन किसी भी समस्या का समाधान नहीं करता है वरन् व्यक्ति को ही समस्या समाधान करने योग्य बनाता है। इस प्रकार निर्देशन का अर्थ है व्यक्ति को उसकी शक्तियों का ज्ञान इस प्रकार करा दिया जाय कि वह अपनी शक्तियों को पहचान सके। वास्तव में निर्देशन ऐसी सहायता है जो व्यक्तिगत रूप से योग्य और पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा किसी भी आयु के व्यक्ति के लिए उसके जीवन के कार्यों का प्रबन्ध करने और अपना स्वयं का भार उठाने के लिए उपलब्ध कराई जाती है।

निर्देशन का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति होता है, उसकी समस्या नहीं। उसकी समस्याओं का अध्ययन, निर्देशन बाद में करता है, पहले तो व्यक्ति की शक्ति तथा योग्यताओं का अध्ययन करता है। यूनाइटेड ऑफिस ऑफ एजुकेशन ने लिखा है, ''निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति का परिचय विभिन्न उपायों से, जिनमें विशेष प्रशिक्षण भी सम्मिलित है तथा जिनके माध्यम से व्यक्ति को प्राकृतिक शक्तियों का बोध भी हो, कराती है जिससे वह अधिकतम व्यक्तिगत एवं सामाजिक हित कर सके।''

निर्देशन वास्तव में एक सेवा है जो व्यक्ति को स्वयं के बारे में जानने अर्थात् यह ज्ञान प्राप्त करने में कि उसकी मनोवृत्तियाँ, रुचियाँ एवं योग्यताएँ क्या हैं, उसकी भौतिक, मानसिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत आवश्यकताएँ क्या हैं, सहायता प्रदान करती है तथा इसके साथ-साथ व्यक्ति की अधिकतम विकास प्राप्त करने में भी सहायक होती है। इसके अन्तर्गत वह सेवाएँ भी सम्मिलित हैं जो व्यक्ति की मदद केवल आत्मविश्वास की प्राप्ति में ही नहीं वरन् आत्म-निर्देशन में कौशलों को विकसित करने में भी करती है।

ये सेवाएँ व्यक्ति को उपयुक्त व्यक्तिगत शैक्षिक एवं व्यावसायिक लक्ष्यों को स्थापित करने में सहायता प्रदान करती हैं अर्थात् यह व्यक्ति को इस योग्य बनाती है कि वह इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वांछित तरीके से योजना बनाने पर विचार हेतु अपनी आकांक्षाओं एवं उद्देश्यों के अनुरूप मूल्यों के मानक को विकसित कर सके।

व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास वातावरण के सम्पर्क में ही सम्भव है। इसलिए व्यक्ति को सन्तुलित विकास तथा जीवन की सफलता हेतु आवश्यक हो जाता है कि वह स्वयं अपने आपको तथा वातावरण को समझे जिससे वह विभिन्न परिस्थितियों से समायोजन स्थापित कर सके। जीवन पथ पर व्यक्ति को अनेक कठिनाइयों का सामना व समस्याओं का समाधान करना पड़ता है। कभी-कभी इनका समाधान व्यक्ति अकेल नहीं कर पाता है उसे अन्य व्यक्ति की सहायता लेनी पड़ती है। सभी प्रकार की सुनियोजित सहायता जो व्यक्ति की समस्याओं को सुलझाने तथा उसके जीवन को सुखमय बनाने में सहायक होती है, निर्देशन कहलाती है। निर्देशन के सम्प्रत्यय को स्पष्ट करते हुए क्रो तथा क्रो ने लिखा है कि, यह एक व्यक्ति के दृष्टिकोण को दूसरे पर लादने की प्रवृत्ति नहीं है, निर्देशन में व्यक्ति प्रधान माना जाता है तथा व्यक्ति स्वयं अपने बारे में निर्णय करता है। यह दूसरों के दायित्व को अपने ऊपर लेकर चलना नहीं है वरन् निर्देशन एक ऐसी सहायता है जो व्यक्तिगत रूप से योग्य और प्रशिक्षित व कुशल परामर्शदाता द्वारा किसी भी आयु के व्यक्ति को उसके जीवन कार्यों का प्रबन्ध

करने, अपने दृष्टिकोण का विकास करने, अपने निजी निर्णय करने एवं अपना स्वयं का भार उठाने के लिए दी जाती है।

1.3 निर्देशन के सिद्धान्त

निर्देशन के सिद्धान्त से आशय उन मूलभूत नियमों से है जिनके आधार पर निर्देशन की प्रक्रिया का संचालन किया जाता है। निर्देशन में व्यक्ति के भविष्य के सम्बन्ध में विशेष चिन्ता रहती है। मूलतः यह निर्देशन कार्यकर्त्ता की दूरदर्शिता एवं सूझबूझ पर निर्भर करता है । हम यह भलीभाँति रूप से जानते हैं कि सामान्य एवं असामान्य प्रायः दोनों परिस्थितियों में निर्देशन की आवश्यकता का अनुभव किया जाता है। लेस्टर डी0 क्रो तथा एलिस क्रो ने अपनी पुस्तक 'एन इन्ट्रोडक्शन टू गाइडेन्स' में निर्देशन के चौदह सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, जो निम्नवत् है-

१. व्यक्ति की सम्पूर्ण प्रदर्शित अभिवृत्तियों एवं व्यवहार के स्वरूपों में उसके जटिल व्यक्तित्व साँचे का हर पक्ष एक महत्त्वपूर्ण घटक होता है। उन निर्देशन सेवाओं को जिनका लक्ष्य किसी खास अनुभव क्षेत्र में वांछनीय समंजन लाना है, व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से महत्त्व देना चाहिए।
२. यद्यपि सभी मनुष्य कई दृष्टियों से समान हैं, तथापि व्यक्तिगत भिन्नताओं को पहचानना तथा बालक, किशोर या प्रौढ़ के निर्देशन या सहायता के सिलसिले में उन पर यदेष्ठ ध्यान देना अपेक्षित है।
३. निर्देशन का प्रकार्य है-(अ) व्यक्ति को प्रेरक, उपयोगी तथा प्राप्त होने योग्य उद्देश्यों के निरूपण में मदद देना तथा (ब) इन उद्देश्यों को अपने व्यक्तिगत मामलों में लागू करना।
४. वर्तमान सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक असन्तोषों के कारण अनेक अपसमंजनकारी तत्त्व उत्पन्न हो रहे हैं जिनसे निपटने के लिए अनुभवी एवं भली प्रकार से प्रशिक्षित निर्देशन-उपबोधकों एवं समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों के मध्य सम्बन्ध जोड़ने की आवश्यकता है।
५. निर्देशन को एक ऐसी सतत् सेवा के रूप में उपकल्पित करना चाहिए जो व्यक्ति को उसके बाल्यकाल से लेकर प्रौढ़ावस्था तक उपलब्ध रहती है।
६. निर्देशनका कार्य उन कतिपय व्यक्तियों में ही सीमित नहीं होना चाहिए जो इसकी आवश्यकता स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं, व्यक्ति इसे सभी आयु-वर्ग के उन लोगों के लिए उपलब्ध कराना चाहिए जो इससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में लाभ उठा सकते हैं।
७. विविध पाठ्यक्रमों के लिए गठित अध्ययन सामग्रियों तथा शिक्षण पद्धतियों में निर्देशन का दृष्टिकोण झलकना चाहिए।
८. यद्यपि निर्देशन क्रिया का ताल्लुक व्यक्ति के जीवन के हर पहलू से होता है, इसके अन्तर्गत सामान्यतः वे क्षेत्र आते हैं जिनमें इस बात में दिलचस्पी रखी जाती है कि व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक अस्वास्थ्य उसके परिवार, विद्यालय तथा व्यावसायिक एवं सामाजिक माँगों एवं सम्बन्धों में किस सीमा

तक बाधक होता है अथवा इन क्षेत्रों में पाई जाने वाली परिस्थितियों से व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य किस हद तक प्रभावित होता है?

९. शिक्षकों तथा अभिभावकों को निर्देशनपरक जिम्मेदारियाँ सौंपनी चाहिए जिससे वे निर्देशन-कार्य में अपेक्षित भूमिका निभा सकें।

१०. किसी आयु-स्तर पर निर्देशन की विशिष्ट समस्याओं को उन्हीं व्यक्तियों को सुपुर्द करना चाहिए जो खास क्षेत्रों के समंजन की प्रक्रियाओं से निपटने के लिए प्रशिक्षित हों।

११. निर्देशन के विविध पक्षों का प्रशासन बुद्धिमत्तापूर्वक एवं व्यक्ति के सम्यक् अवबोध के आधार पर करने की दृष्टि से व्यक्तिगत मूल्यांकन तथा अनुसंधान के कार्यक्रमों को संचालित करना चाहिए तथा छात्र की प्रगति एवं उपलब्धि का सही विवरण प्रस्तुत करने वाले संचयी अभिलेखों को निर्देशनकर्मियों तक उपलब्ध करना चाहिए। साथ ही ठीक ढंग से चुने गये मानकीकृत परीक्षणों तथा मूल्यांकन के अन्य उपकरणों के माध्यम से छात्रों की मानसिक क्षमता, निष्पत्ति, प्रदर्शित रुचियों एवं व्यक्तित्व विषयक विशेषताओ से सम्बन्धित विशिष्ट प्रकार के प्रदत्तों (आधार-सामग्री) को संकलित कर उनका रिकार्ड रखना चाहिए तथा निर्देशन के लिए उनका समुचित प्रयोग करना चाहिए।

१२. व्यक्तिगत एवं सामुदायिक आवश्यकताओं के अनुकूल निर्देशन के लिए गठित कार्यक्रम नमनीय (लचीला) होने चाहिए।

१३. निर्देशन कार्यक्रम का दायित्व ऐसे सुयोग्य एवं सुप्रशिक्षित नेतृत्व पर केन्द्रित होना चाहिए जो अपने सहकर्मियों तथा समुदाय कल्याण में रुचि रखने वाले व्यक्तियों एवं निर्देशन से जुड़ी एजेन्सियों के पूर्ण सहयोग द्वारा कार्य कर सके।

१४. विद्यालयों में उपलब्ध निर्देशन के कार्यक्रमों का समय-समय पर मूल्यांकन करना चाहिए। इनकी कार्यवाहियों की सफलता ऐसे परिणामों से ज्ञात करनी चाहिए जो निर्देशन कार्य से जुड़े हुए निर्देशकों तथा निर्देशित व्यक्ति में कार्यक्रम के प्रति प्रदर्शित अभिवृत्तियों द्वारा प्रकट होती है। निर्देशन की कार्यवाही का लाभ जिन्हें मिला है उनके व्यवहार में किस तरह की तब्दीली आई, यह उससे भी मालूम होता है।

उपर्युक्त सिद्धान्तों पर विचार करने से यह अवगता होगा कि निर्देशन-कार्यक्रमों के सम्यक संचालन हेतु अत्यन्त कुशल एवं दूरदर्शितापूर्ण नेतृत्व अपेक्षित है। इसके मूल में निर्देशनकर्मियों, प्रशासकों, शिक्षकों, विशेषज्ञों एवं निर्देशन का लाभ उठाने वाले सेवार्थियों का आपसी सहयोग, उनकी निष्ठा तथा प्रेरणा की जबर्दस्त भूमिका होती है। निर्देशन के सिद्धान्तों की संख्या निश्चित नहीं की जा सकी है ।

अलग-अलग विद्वानों ने निर्देशन के सिद्धान्तों की संख्या अलग-अलग मानी है। लीफिवर व टसेल, जोन्स इम्ब्रीज और ट्रैक्सलर आदि ने भी निर्देशन के सिद्धान्तों का अलग-अलग उल्लेख किया है। किन्तु इन सभी विद्वानों द्वारा

स्वीकृत सिद्धान्तों में कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं जो प्रकारान्तर से सभी ने स्वीकार किये हैं। हम यहाँ उनका उल्लेख समीचीन समझते हैं-

१. **व्यक्ति के महत्व एवं प्रतिष्ठा की स्वीकृति:** निर्देशन का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं महत्व को ध्यान में रखा जाय। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्तियों, सम्भावनाओं एवं क्षमताओं के अनुरूप पूर्ण विकास तक ले जाना निर्देशन का लक्ष्य है। तभी समाज संगठित रूप से अधिकतम प्रगति कर सकता है। इसी सिद्धान्त से जुड़ा हुआ निर्देशन का एक अन्य सिद्धान्त है कि निर्देशन की सुविधा सभी को उपलब्ध हो, केवल कुछ विशेष आवश्यकता वाले व्यक्तियों के लिए ही नहीं। सामान्य व्यक्ति के जीवन में प्रगति के लिए एवं समस्याओं के समाधान के लिए निर्देशन उतना ही आवश्यक है, जितना कि विशेष समस्या वाले व्यक्ति के लिए।

२. **स्वयं निर्देशन करने की योग्यता है:** निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति की इस प्रकार सहायता करे कि वह समस्याओं के प्रति अपनी सूझ, विवेक एवं निर्णय करने की योग्यता विकसित कर ले । इसके लिए व्यक्ति को अपनी परिस्थितियों को समझने, उनमें समायोजन करने एवं अपनी क्षमताओं से वाकिफ होने में निर्देशन सहायक सिद्ध होता है। व्यक्ति धीरे-धीरे समस्याओं के बारे में आत्म-निर्भरता एवं आत्म-विश्वास विकसित कर लेता है। यह ध्यान रहे कि विशेष परिस्थितियों को छोड़कर परामर्शदाता को अपनी ओर से कोई निर्णय या हल उपबोध्य पर थोपना नहीं चाहिए क्योंकि ऐसा करने पर सम्भव है कालान्तर में वह हर व्यक्ति के लिए अनुपयुक्त सिद्ध हो तथा उसमें आत्मविश्वास की कमी हो जाय ।

३. **निर्देशन जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है:** निर्देशन सभी के लिए सुलभ होना चाहिए। निर्देशन की आवश्यकता सामान्य व्यक्ति के लिए भी उतनी ही है जितनी विशिष्ट समस्या वाले व्यक्तियों के लिए। निर्देशन प्रक्रिया किसी विशेष आयु के लोगों तक सीमित नहीं है अपितु यह सम्पूर्ण जीवन भर चलती रहनी चाहिए, क्योंकि जीवन और समस्याओं का चोली-दामन का साथ है।

   अधिकांश समस्याएँ ऐसी होती हैं जिनका हम तुरन्त तैयार कोई हल प्रस्तुत नहीं कर सकते, उनके समाधान के लिए समय की अपेक्षा होती है। निर्णय समझ-बूझ कर लिये जाते हैं, जल्दबाजी में नहीं। इसके अतिरिक्त विशिष्ट समस्या का समाधान प्राप्त हो जाने के बाद उपबोध्य के सामने अन्य नई समस्याएँ आती रहती हैं। फलस्वरूप निर्देशन की आवश्यकता सतत् विद्यमान रहती है और इस प्रकार निर्देशन जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है; हाँ यह अवश्य होता है कि ज्यों-ज्यों उपबोध्य की सूझ एवं विवेक का विकास होता जाता है, वह परामर्शदाता या निर्देशक पर अपेक्षाकृत निर्भरता कम करता जाता है।

४. **सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर दृष्टि:** व्यक्ति की समस्याओं पर विचार करते समय निर्देशक को उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ध्यान में रखना आवश्यक है। व्यक्ति की समस्याएँ शैक्षिक, व्यावसायिक, व्यक्तिगत या अन्य कई प्रकार की हो सकती हैं पर उनका सम्बन्ध एक दूसरे से बना रहता है। उदाहरण के लिए, व्यावसायिक निर्देशन में व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास एवं उसके समायोजन सम्बन्धी कठिनाइयों को भी ध्यान में रखना होता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व टुकड़ों में नहीं विभक्त किया जा सकता। वह एक संश्लिष्ट इकाई के रूप में कार्य करता है

५. **विभिन्न कार्यकर्त्ताओं के कार्यों में समन्वय:** निर्देशन प्रक्रिया अत्यधिक व्यापक एवं विस्तृत होती जा रही है। फलस्वरूप विभिन्न कार्यों के लिए विशिष्टीकृत लोगों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है। निर्देशन सेवाओं का संगठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि सभी निर्देशन कार्यकर्त्ताओं के प्रयत्नों में समन्वय स्थापित किया जा सके। प्रत्येक कार्यकर्त्ता अपनी योग्यता के अनुरूप योगदान करे और सभी कार्यकर्त्ता अपने प्रयत्नों को समन्वित दिशा में ले जायें । इसके लिए इन बातों का ध्यान रखना जरूरी है-(1) निर्देशन सेवाओं का संगठन तर्कसंगत आधार पर किया जाय, (2) विशिष्ट योग्यताओं के अनुरूप अलग-अलग कार्यकर्त्ताओं को अलग-अलग भूमिकाएँ सौंपी जाये और निर्देशन सेवाओं से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध सभी व्यक्ति पूरे दिल से एक-दूसरे को सहयोग प्रदान करें।

निर्देशन प्रक्रिया में निर्देशन कर्मचारियों के साथ ही कक्षाध्यापक, माता-पिता एवं अन्य सूत्रों का सहयोग निर्देशन की सफलता के लिए आवश्यक है। जहाँ निर्देशन सेवा में एक से अधिक व्यक्ति लगे हों, वहाँ एक निरीक्षण अधिकारी उन सभी के कार्यों के संयोजन के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए। कार्य बड़ा हो अथवा छोटा, निर्देशन की पूर्णता के लिए सभी को समुचित महत्व प्रदान किया जाना चाहिए।

६. **निर्देशन सेवा के वस्तुगत अध्ययन विशलेषण पर आधारित होनी चाहिए:** निर्देशन प्रक्रिया आधुनिक युग में काफी आगे बढ़ चुकी है। समस्याओं का अब विस्तृत परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जाता है और प्राप्त आँकड़ों के आधार पर निर्देशन कार्य चलता है। बिना गहराई से अध्ययन किये हुए कोई परामर्शदाता अपना कार्य करता है तो उपबोध्य को लाभ के बजाय हानि पहुँचा सकता है। शैक्षिक, व्यावसायिक तथा निजी किसी क्षेत्रा में निर्देशन की सफलता के लिए निर्देशक के पास विभिन्न निर्देशन संस्थाओं, व्यावसायिक सूचना-प्राप्ति के सूत्रों तथा व्यक्ति को रोजगार प्रदान करने में सहायता करने वाली संस्थाओं के बारे में पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए ।

७. **समकालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से परिचय:** निर्देशकों को जहाँ अपने क्षेत्र में जानकारी होनी आवश्यक है वहाँ समकालीन राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन से भी परिचित होना चाहिए। क्रो तथा क्रो के अनुसार व्यक्ति के अपसमायोजन में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक

अशान्ति का महत्वपूर्ण हाथ होता है। अतः समस्याओं का निदान खोजते समय उन राजनीतिक एवं सामाजिक सन्दर्भों को ध्यान में रखा जाना चाहिए, जिनके कारण अपसमायोजन की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं।

८. **लचीलापन:** व्यक्ति की समस्याओं का जन्म उस परिवेश में होता है जहाँ वह जीवन बिताता है। परिवेश के बदलने से समस्याओं का रूप भी परिवर्तित होता रहता है। अतः निर्देशन में आवश्यकतानुसार परिवर्तन के लिए लचीलापन होना चाहिए। व्यवस्थित निर्देशन कार्यक्रम रूढ़ि पर आधारित न होकर समाज और व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार सतत् परिवर्तन का प्रावधान रखता है।

९. **सर्वांगीण विकास में सहयोग:** निर्देशन का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि यह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायता करे। यद्यपि निर्देशन के कार्य का प्रारम्भ किसी विशिष्ट समस्या के सन्दर्भ में होता है तथापि उसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक होना है। व्यक्ति की विशिष्ट समस्या का सम्बन्ध उसके सम्पूण्र व्यक्तित्व से होता है। किसी भी कार्य को करते समय व्यक्ति के दृष्टिकोण, मान्यताएँ, मूल्य एवं कार्य करने के ढंग इत्यादि में उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रतिच्छादित होता है। इसलिए निर्देशन सेवाओं को व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास में सहायक होना चाहिए।

१०. **अधिकांश व्यक्तियों को सामान्य मानना:** हम्फ्रीज एवं ट्रैक्सलर के अनुसार निर्देशन सेवाओं की व्यवस्था करते समय अधिकांश व्यक्तियों को सामान्य मानकर रखना चाहिए। कुछ विशिष्ट व्यक्ति, जो बौद्धिक या शारीरिक रूप से पिछड़े हों या जिनका संवेगात्मक विकास बहुत ही अपर्याप्त हो विशेष निर्देशन की आवश्यकता अनुभव करता है। ऐसे लोगों के लिए निर्देशन की विशिष्ट सुविधाएँ प्रदान की जा सकती हैं पर अधिकांश व्यक्तियों को जो सामान्य के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं, समस्याओं एवं समायोजन के लिए निर्देशन सेवाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए। छात्रों के मन पर ऐसा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए कि निर्देशन कर्मचारी केवल 'समस्या छात्रों' पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। इसके लिए विशिष्ट समस्या वाले छात्रों को विशेष योग्यता प्राप्त निर्देशकों को सौंपकर सामान्य निर्देशक सामान्य छात्रों के लिए अधिक समय निकाल सकता है। ऐसा करके वह अन्य छात्रों को अपसमायोजन एवं असामान्य बनने से रोकने में सहायक हो सकता है।

११. **निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को आवश्यक गोपनीयता बनाये रखना:** निर्देशनकर्त्ता को छात्रों या निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का विश्वास अटूट रखने के लिए उनके द्वारा प्रदत्त व्यक्तिगत सूचनाओं को अनावश्यक रूप से सभी के सामने नहीं बताना चाहिए। गोपनीयता के नैतिक मानदण्डों का पालन उन्हें कठोरता से करना चाहिए। यदि निर्देशक ही इसका पालन नहीं करता है तो वह उपबोध्य का विश्वास खो बैठेगा और अन्य विशिष्ट छात्रों को भी छात्र् अपनी व्यक्तिगत समस्याओं के बारे में स्पष्टतापूर्वक सभी

बातें बताने से हिचकिचायेगा। निर्देशन सेवाओं में लगे हुए व्यक्तियों को यदि इस प्रकार की जानकारी देनी हो तो भी उसे व्यक्तिगत रूप से मिलकर बताना चाहिए।

१२. **वैयक्तिक भिन्नताओं का ध्यान:** यद्यपि सामान्य व्यक्तियों की अनेक समस्याओं में बहुत कुछ समानता होती है फिर भी आनुवंशिकता एवं परिवेश के कारण समस्याओं का स्रोत अलग-अलग हो सकता है। कोई भी दो व्यक्ति पूर्णतः एक जैसे नहीं होते, अतः निर्देशन कार्यकर्त्ता को निर्देशन सेवाएँ प्रदान करते समय वैयक्तिक भिन्नताओं को अपनी दृष्टि में रखना चाहिए।

१३. विशेष **प्रशिक्षण:** आज विज्ञान एवं अध्ययन की व्यापकता के साथ-साथ प्रत्येक क्षेत्रों में विशेषीकरण का जोर है। सभ्यता एवं मानव-व्यवहार आज पहलुओं से कहीं अधिक जटिल होते जा रहे हैं। अतः नई-नई समस्याओं एवं परिस्थितियों में साधारण अनुभव प्राप्त व्यक्ति सफल निर्देशक नहीं हो सकता। इसके लिए निर्देशन कर्मचारियों को अपने-अपने कार्य की विशेष दीक्षा की व्यवस्था की जाती है। मूल्यांकन एवं व्यवहार के अध्ययन के लिए व्यावसायिक योग्यता का पता लगाने के लिए और व्यक्ति की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए विशेष योग्यता प्राप्त व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। अतः कुशल निर्देशन के लिए निर्देशन कर्मचारियों के विशेष प्रशिक्षण का प्रावधान आवश्यक है।

हमने निर्देशन के लक्ष्यों, आधारभूत मान्यताओं एवं सिद्धान्तों पर विचार किया। किसी भी कार्य को सफल बनाने में लक्ष्य की निश्चितता एवं व्यवस्थित सिद्धान्तों का ज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। निर्देशन प्रक्रिया का सम्बन्ध व्यक्ति के सर्वांगीण विकास से है, उसकी प्रतिभा के विकास में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने से है। समाज के उन्नति एवं समृद्धि की ओर ले जाने के लिए सभी व्यक्तियों की क्षमता एवं सम्भाव्यता के अनूरूप शैक्षिक व्यावसायिक एवं निजी विषयों में निर्देशन की सुविधा उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

1.4 धारणाएँ

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सभी में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों का व्यक्ति के ऊपर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

सामंजस्य स्थापित करने में व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके आधार पर इन समस्याओं के समाधान की क्षमता का विकास प्रत्येक व्यक्ति में किया जा सकता है। निर्देशन की धारणा कुछ आधारभूत मान्यताओं से समर्थित होती है। कुछ निर्देशन की धारणाएँ निम्नलिखित रूप में वर्णित की जा सकती हैं-

1. **वैश्विक भिन्नता-** व्यक्ति अपनी जन्मजात योग्यता, अभिक्षमता, रुचियों तथा अभिवृत्तियों की दृष्टि से पर्याप्त भिन्नता रखता है। यह भिन्नता हमारे सम्पूर्ण व्यवहार संघात को निर्मित करती है।

2. **अवसरों की विविधता-**व्यक्ति में विविध प्रकार की भिन्नताओं के साथ ही बाह्य परिवेश में भी विभिन्न प्रकार की भिन्नताएँ परिलक्षित होती हैं। शैक्षिक, व्यावसायिक, पारिवारिक व सामाजिक क्षेत्रों में यह विविधता देखी जा सकती है। व्यक्ति का समुचित विकास वांछित दिशा में हो सके तथा विकास के उपरान्त अवसरों का सही उपयोग किया जा सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि सही समय पर इन अवसरों का चयन करने की योग्यता का विकास व्यक्ति में किया जा सके। निर्देशन के द्वारा व्यक्ति को इन अवसरों से सम्बन्धित समस्याओं तथा किस अवसर का, किस समय तथा किस प्रकार उपयोग किया जाय आदि के समाधान हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिये जा सकते हैं।
3. **वैयक्तिक विकास का भावी कथन सम्भव-** मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे परीक्षणों का निर्माण किया है जिनके उपयोग से व्यक्ति के व्यक्तित्व, बुद्धि, अभिरुचि, अभिक्षमता, अभियोग्यता, आदि का मापन किया जा सकता है और व्यक्ति में निहित मानसिक एवं संवेगात्मक विशेषताओं की वस्तुनिष्ठ जानकारी प्राप्त कर व्यक्ति के विकास की दिशा एवं गति के सम्बन्ध में पूर्व कथन किया जा सकता है कि व्यक्ति किस क्षेत्रों में अपनी सर्वाधिक योग्यता का प्रदर्शन कर सकेगा।
4. **समायोजन व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता है-** अवसरों की विविधता एवं व्यक्ति के भीतर पाई जाने वाली विभिन्नता को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि समायोजन व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता है, शिक्षा एवं निर्देशन द्वारा इसकी सन्तुष्टि आवश्यक है। निर्देशन की मुख्य धारणा है व्यक्ति का अपने शैक्षिक, व्यावसायिक एवं वैयक्तिक पर्यावरण में अधिकाधिक समायोजन लाना है।

   व्यक्ति के वांछित विकास के लिए समायोजन की क्षमता का विकास यथासमय किया जाना चाहिए, यह निर्देशन की मूल अभिग्रह है। समायोजन के बिना हमारा पारिवारिक, शैक्षिक, व्यावसायिक एवं सामाजिक जीवन बोझ बन सकता है।
5. **समायोजन द्वारा वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास** - व्यक्ति तथा समाज दोनों के कल्याण में निर्देशन का योगदान होता है। व्यक्ति को स्वयं का विकास तथा उसके समाज की अपेक्षित प्रगति उसकी योग्यताओं, अभिक्षमताओं एवं रुचियों तथा बाह्य अवसरों में तालमेल एवं समुचित समायोजन पर निर्भर होती है। निर्देशन की धारणा है कि व्यक्ति और पर्यावरण में समायोजन की सम्भावना बढ़े, समरसता आये तथा परस्पर सम्बन्धों में तनाव न हो। व्यक्ति में समायोजन की भावना एवं कुशलता का विकास करने से व्यक्ति एवं समाज, दोनों का ही विकास किया जा सकता है। जिन समस्याओं का तत्काल समाधान सम्भव न हो सके उन समस्याओं से व्यर्थ ही जूझने के स्थान पर समायोजन का प्रयास किया जाना चाहिए।

निर्देशन सम्बन्धी उपरोक्त धारणाओं का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है क्योंकि यह प्रक्रिया उन मनोवैज्ञानिक आधारों पर संचालित होती हैं जिनको विभिन्न प्रकार के अनुसंधानों के माध्यम से ज्ञात किया जा चुका है। यही धारणाएँ निर्देशन के सिद्धान्तों के निर्माण में कार्य करती हैं।

1.5 मुद्दे एवं समस्याएँ

निर्देशन का मूल कार्य उन व्यक्तियों की सहायता करना है जिन्हें अपनी समस्या के समाधान के लिए सहायता की आवश्यकता है और जो सहायता चाहते हैं। मानव स्वभाव की जटिलता, एक ही माता-पिता के बच्चों में भी होने वाला विकास सम्बन्धी अन्तर परिवर्तनशील परिस्थितियों तथा सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक दशाओं में निरन्तर होने वाली नूतनता, निर्देशन के मुख्य मुद्दे हैं। भारतीय सन्दर्भ में निर्देशन सेवाओं का आयोजन अधिकांशतः माध्यमिक विद्यालयों को दृष्टिगत रखकर किया गया है। एन0सी0ई0आर0टी0 (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद) राष्ट्रीय स्तर पर, राज्यों में निर्देशनशाला, राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद तथा जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान भी इस कार्य को गति प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं।

परन्तु निर्देशन का व्यवस्थित रूप कुल मिलाकर माध्यमिक स्तरों पर ही दिखाई पड़ता है। प्राथमिक शिक्षा, कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों के स्तर पर निर्देशन का स्वरूप कमजोर एवं अस्पष्ट सा लगता है। जबकि सवतंत्रता के पश्चात् शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है, जनसंख्या का दबाव बढ़ा है, व्यवसाय के अवसरों में अनियंत्रित विस्तार, मानवीय संसाधनों के विकास में न्यूनताओं के परिणामस्वरूप निर्देशन की समस्या अत्यन्त जटिल एवं चुनौतीपूर्ण बन गयी है। शैक्षिक, व्यावसायिक एवं वैयक्तिक निर्देशन के सभी अनुक्षेत्रों में प्रभावी निर्देशन की व्यवस्था करना शैक्षिक प्रशासकों के लिए बहुत बड़ी समस्या है। निर्देशन के मुख्य मुद्दे एवं समस्याएँ निम्नवत् हैं-

1. **प्रशिक्षण का अभाव**-निर्देशन कार्यक्रमों को समुचित प्रकार से संचालित करने हेतु विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है, उनके प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए, अभी भी प्रशिक्षण का उचित प्रबन्ध नहीं है।

2. **निर्देशन समस्याओं का अनुचित प्रबंधन**– शैक्षिक, व्यावसायिक एवं वैयक्तिकं क्षेत्रों में उपलब्ध निर्देशन सेवाओं का प्रबन्ध एवं उनकी व्यवस्था अपने पारस्परिक तालमेल, संगठन एवं सहयोग की दृष्टि से कई तरह की समस्याओं से ग्रस्त है। सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों तरह के निर्देशन संस्थानों में प्रबन्धन की उचित व्यवस्था नहीं है। सरकारी संस्थानों में उच्च कोटि के उपकरणों एवं संसाधनों के होते हुए भी उनकी कार्यान्वयन की शैली नितान्त कमजोर है। प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों का अभाव है।

3. **अभिभावकों की उदासीनता-** हमारे निर्देशन कार्यक्रमों की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि उनके क्रियान्वयन में आम अभिभावक कोई दिलचस्पी नहीं लेता है। निर्देशन के बारे में उनकी रुचि जैसे-तैसे केवल व्यवसायों के दिलाने तक प्रायः सीमित होती है। जबकि अभिभावकों की निर्देशन सेवाओं में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उनमें अपेक्षित स्तर की निर्देशन चेतना का अभाव है। इसलिए निर्देशन सेवाओं के प्रभावी संचालन हेतु आवश्यक है कि अभिभावकों को निर्देशन के ढाँचे में ढाला जाय।

4. **मानकीकृत उपकरणों की कमी-** कार्य के सम्पादन में अपेक्षित संसाधनों का अभाव एवं मानकीकृत परीक्षणों की कमी एक आम समस्या है। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, मनोवैज्ञानिक केन्द्रों, कॅरियर केन्द्रों पर व्यावसायिक सूचना का अभाव है, उनके लिए उपयुक्त सामग्री एवं स्रोतों के विकास के प्रति पर्याप्त उदासीनता विद्यमान है। इसके अतिरिक्त निर्देशन की दृष्टि से उपयोगी पाये जाने वाले वस्तुनिष्ठ उपकरण पर्याप्त मात्रा में उपयुक्तता के आधार पर उपलब्ध नहीं है। ऐसे उपकरणों की रचना एवं उनके मानकीकरण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' के अन्तर्गत 'एजुकेशन ट्रेनिंग सर्विस' जैसी संस्थाओं के गठन पर जोर तो दिया गया है, किन्तु उनकी निर्देशन सेवाओं में उपयोग बन सकने योग्य सम्भावनाओं के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता है।

5. **निर्देशन सेवाओं में विविधता एवं यथार्थ का पुट न होना-** हमारे यहाँ जो भी निर्देशन की सेवाएँ गठित की गयी हैं उनका स्वरूप प्रायः एक जैसा कठोर एवं औपचारिक होने के कारण वास्तविकता से कहीं अधिक दूर हो जाता है। भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि वाले बच्चों जैसे-ग्रामीण एवं शहरी, अनुसूचित जाति एवं जनजाति, सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े, हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम आदि के लिए एक ही प्रकार की सूचनाओं, सम्प्रेषण विधि आदि के कारण भी कई समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

6. **विद्यार्थियों के संख्या की अधिकता-**निर्देशन की सेवा को सम्यक् रूप देने में विभिन्न आयु वर्ग के लोगों विशेषकर युवा वर्ग के आकार की उनकी संख्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा सकता है। आज हमारे विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की भारी संख्या मौजूद है उन्हें पूरी तरह उपयोगी सूचनाओं का सम्प्रेषण कर पाना ही दुष्कर हो जाता है, व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित कर पाना तो दूर की बात है। इसके लिए हमारी परम्परागत ढंग से चली आ रही कार्य पद्धति अधिक जिम्मेदार मानी जा सकती है। हमें सूचना एवं प्रौद्योगिकी के नये संसाधनों का प्रयोग करना चाहिए।

7. **शैक्षिक प्रशासकों में अपेक्षित अभिवृत्ति की कमी-** निर्देशन कार्यक्रमों के सुचारुपूर्वक संचालन हेतु प्रशिक्षित निर्देशनकर्त्ताओं के अतिरिक्त शिक्षकों, प्रधानाचार्यों, प्रबन्धकों में प्रायः अपेक्षित समय व धैर्य की कमी देखी गयी है। निर्देशन के प्रति उनकी अभिवृत्ति सकारात्मक नहीं होती है, प्रायः वे उदासीन बने

रहते हैं। संस्थाओं में निर्देशन की प्रक्रिया, उनकी आवश्यकता एवं महत्व का ज्ञान कराने हेतु विशिष्ट गोष्ठियों एवं कार्यशालाओं का आयोजन कम ही किया जाता है।

8. **अनुवर्ती अध्ययन का अभाव-** वैयक्तिक, शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के बाद आमतौर से सेवार्थी का अनुवर्ती अध्ययन काफी लाभप्रद होता है क्योंकि इससे निर्देशन की सफलता या असफलता का वास्तविक संकेत मिलने के अतिरिक्त इसके प्रभावों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। परन्तु अपने यहाँ ऐसे अनुवर्ती अध्ययन न के बराबर ही सम्पन्न होते हैं।

9. **व्यवसायों एवं उद्यमों के अवसरों का अभाव-** हमारे देश में जिस गति से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विस्तार हुआ है, व्यक्तियों द्वारा उत्पादक उद्यमों को अपनाये जाने एवं व्यवसायों के अवसर कम मिल पा रहे हैं। ऐसे अवसर पैदा करने के प्रति सरकारी प्रयास अवश्य हो रहे हैं, किन्तु ये पर्याप्त नहीं हैं। ग्रामीण युवाओं के लिए 'स्वरोजगार' योजनाएँ चालू तो की गयी हैं पर उनका प्रचार-प्रसार न होने से तथा लालफीताशाही के कारण, उनका लाभ युवा बेरोजगारों को नहीं मिल पा रहा है। भौगोलिक व्यवसायों एवं उद्यमों के अवसर उत्पन्न करने हेतु वैज्ञानिकों, राजनेताओं, प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों तथा उद्योगपतियों की भूमिका नगण्य सी बन गयी है। ऐसी स्थिति में शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन सेवाओं को आघात पहुँचना स्वाभाविक है ।

10. **निर्देशन के क्षेत्रों में शोधकर्त्ता का अभाव-** समस्याओं के समाधान हेतु शोध कार्य की आवश्यकता होती है। हर विधा या क्षेत्रों का विकास उसमें सम्पादित होने वाले शोध कार्यों के माध्यम से हो रहा है। किन्तु निर्देशन के क्षेत्रों में मौलिक, व्यावहारिक एवं क्रियात्मक शोधों की गुंजाइश होते हुए भी हमारे मनोविज्ञानी व शिक्षाशात्री इस ओर आकर्षित नहीं हो सके हैं । निर्देशन के क्षेत्रों में जो शोध कार्य सम्पन्न हुए हैं वे अल्प हैं। शोध कार्य के अभाव में निर्देशन सेवाओं का विस्तार नहीं हो सकता है।

1.6 निर्देशन की आवश्यकता

वर्तमान औद्योगिक एवं वैज्ञानिक युग में नवीन तकनीकों का आविर्भाव हुआ है। विकास ने जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है। सामाजिक एवं व्यक्तिगत क्षेत्रों में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। तीव्र गति से विकसित हो रहे समाज में व्यक्ति का समायोजन, उसका व्यक्तित्व कहीं न कहीं से प्रभावित हुआ है जिसके कारण अनेक समस्याओं ने जन्म लिया है। परिणामस्वरूप निर्देशन सेवाओं की आवश्यकता अनुभव की जा रही है ।

कोचर ने ठीक ही लिखा है, ''व्यक्तियों के लिए समाज बहुत पेचीदा, माता-पिता एवं अभिभावकों के लिए सामंजस्य की समस्या बहुत तीक्ष्ण तथा विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त विषयों के चुनाव की समस्या बहुत ही प्रबल हो गयी है। छात्रों के उचित समायोजन के लिए प्रत्येक विद्यालय में निर्देशन सेवाओं की आवश्यकता है।''

व्यक्ति में पाई जाने वाली वैयक्तिक भिन्नता, उसकी एक जैसी क्षमताओं का न होना, उसके परिवेश की विविधता निर्देशन की आवश्यकता को सहज संकेत प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त हमारे समाज की संरचना का निरन्तर जटिल होते रहना, शैक्षिक तथा व्यावसायिक सम्भावनाओं एवं आकांक्षाओं में अभिवृद्धि, शैक्षिक अवसरों की विविधता, विशाल, तकनीकी एवं औद्योगिक विकास के बढ़ते कदम ने निर्देशन की आवश्यकता को पर्याप्त बल प्रदान किया है। व्यक्ति और समाज को ध्यान में रखते हुए निर्देशन की आवश्यकता को निम्न क्षेत्रों में व्यक्ति किया जा सकता है-

1. **निर्देशन व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता-**प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में निर्देशन की आवश्यकता बुनियादी तौर पर पाई जाती है। जोन्स ने तो यहाँ तक कह डाला कि निर्देशन की आधारशिला मानवीय जीवन तथा मानवीय शक्ति के संरक्षण तथा मानवीय आवश्यकता की वास्तविकता पर टिकी हुई है। अनेक सन्दर्भों पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होगा कि मनुष्य की अधिकांश शक्ति एवं उसका अधिकांश समय व्यर्थ की बातों में नष्ट हो जाता है। अपने गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने से पूर्व ही व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार की सलाह की जरूरत महसूस होने लगती है। इस प्रकार जीवन के हर विकास पथ पर आगे बढ़ता हुआ मानव किसी न किसी क्षण निर्देशन की अपेक्षा अवश्य रखता है।
2. **परिवर्तित पारिवारिक सन्दर्भ-** इधर हमारे 'परिवार' एवं 'पारिवारिक जीवन' की धारणा में भारी तब्दीली आई है। संयुक्त परिवार की अपेक्षा अब छोटे-छोटे परिवार जिसमें पति-पत्नी एवं उनके बच्चे शामिल हैं, पर्याप्त संख्या में विकसित हुए हैं। संयुक्त परिवार जिनका आकार प्रायः बड़ा होता था, बड़े भाई एवं बहनों के सान्निध्य में निर्देशन का कार्य अनौपचारिक ढंग से सम्पादित कर देते थे । किन्तु अब बच्चों की अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही अपने माँ-बाप के अलावा समाचार पत्रों, दूरदर्शन, रेडियो, चलचित्रों तथा अन्य सम्प्रेषण माध्यमों से तरह-तरह की सूचनाएँ एवं निर्देशन सुलभ रहते हैं। इन परिवर्तित पारिवारिक सन्दर्भों में न केवल निर्देशन की आवश्यकता में तब्दीली आई है, बल्कि इसके स्वरूप, माध्यम एवं विधियों में भी विशेष आयाम जुड़े हैं।
3. **जनसंख्या विस्फोट एवं मानवीय संसाधनों का विस्तार-** भारतीय सन्दर्भ में जनसंख्या के विस्फोट एवं उसके तहत स्वाभाविक एवं अनियोजित ढंग से विकसित मानवीय संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में भी निर्देशन की आवश्यकता का अनुभव किया गया है। हमारी आबादी गाँवों एवं शहरों में जिस तेजी से बढ़ी है, उसमें सुनियोजित विकास की प्रक्रिया को पर्याप्त आघात पहुँचा है। इस सिलसिले में हर आयु वर्ग के लोगों, विशेषतौर से युवा वर्ग को खास प्रकार की जानकारी एवं निर्देशन की महती आवश्यकता है। साथ ही विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के प्रभावों से अभिभूत पूरे मानवीय समाज में संचार माध्यमों, दूरी, अन्तर्सम्बन्धों तथा गतिशीलता की दृष्टि से अनेकानेक संसाधनों का उद्भव हुआ है। इस प्रकार बढ़ती हुई

आबादी एवं उसके द्वारा संसाधनों के सम्यक् सदुपयोग किये जाने की सम्भावना को दृष्टिगत रखकर निर्देशन प्रदान करने की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता।

4. **शैक्षिक एवं सामाजिक आकांक्षाएँ-** बच्चों से ल्कर वयस्क तक सभी आज अपने शैक्षिक एवं सामाजिक आकांक्षाओं में विस्फोट का अनुभव कर रहे हैं। हर व्यक्ति शिक्षा की दृष्टि से आगे बढ़ना चाहता है और तदनुसार अपना सामाजिक स्तर बदलने के लिए सचेष्ट है। शैक्षिक आकांक्षाओं को सन्तुष्ट करने के निमित्त तरह-तरह के औपचारिक तथा अनौपचारिक पाठ्यक्रम गठित किये जा रहे हैं। अब पत्रचार पाठ्यक्रम की व्यवस्था के अतिरिक्त मुक्त विश्वविद्यालय एवं मुक्त विद्यालय जैसी संस्थाओं को बड़ी तेजी से समर्थन मिल रहा है। इन पाठ्यक्रमों से समुचित लाभ उठा सकने के लिए निर्देशन का होना आवश्यक है। व्यक्ति अपनी सामाजिक गतिशीलता में किस प्रकार की वृद्धि लाये जिससे उसका समयोजन न बिगड़े, इस दृष्टि से भी उचित निर्देशन अपेक्षित है।
5. **परिवर्तित औद्योगिक एवं तकनीकी सन्दर्भ-** स्वतंत्र्ता प्राप्ति के बाद भारतीय सन्दर्भ में औद्योगिक एवं तकनीकी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हमारे सामने आई हैं। उद्योगों के विकास के साथ मानवीय सहयोग के नये पक्ष उभरे हैं। टेक्नोलॉजी का अनुप्रयोग हर पग पर हो रहा है। इससे हम बच नहीं सकते। इसीलिए उद्योगों में तथा व्यवसायों से भिन्न सन्दर्भों में भी मानव-प्रशिक्षण के कार्यक्रमों को युद्ध स्तर पर लागू किया गया है । अब हाईस्कूल के तुरन्त बाद व्यवसायोन्मुख शिक्षा उपलब्ध कराने की योजना को अपेक्षित महत्त्व प्रदान करने की संस्तुति 'नई शिक्षा नीति' के माध्यम से भी की जा रही है। इस प्रकार नई नीति के फलस्वरूप व्यक्त एवं अव्यक्त सन्दर्भों में युवा वर्ग को ठोस एवं यथार्थवादी निर्देशन की नितान्त आवश्यकता है।
6. **राजनीतिक परिवर्तन-** राजनीतिक परिवर्तन का हमारे सामाजिक, व्यावसायिक एवं शैक्षिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। नये व्यवसायों तथा शिक्षा के कार्यक्रमों से सम्बन्धित नीतियों के सन्दर्भ में यह प्रभाव तुरन्त देखा जा सकता है। अभी हाल ही में 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' तथा अन्य मंत्रालयों के कार्य क्षेत्रों तथा कार्य पद्धतियों में जो परिवर्तन हुए हैं, वे इस बात के मूर्त्त प्रमाण कहे जा सकते हैं। इस प्रकार राजनीतिक परिवर्तन के कारण होने वाले बदलाव हमारे जीवन के प्रायः हर हिस्से को प्रभावित करते हैं। हमारा नजरिया, सोचने का ढंग, कार्य संस्कृति तथा हमारे मूल्य बुनियादी तौर पर बदलने लगे हैं। इस बदलाव की स्थिति में नये मुद्दों तथा नई नीतियों के सफल एवं प्रभावी कार्यान्वियन हेतु निर्देशन की भूमिका सहज ही स्पष्ट हो जाती है।
7. **नगरीकरण-** गाँवों से अपना रिश्ता समाप्त कर नगर में बसने वाले शिक्षित एवं नौकरी पेशा व्यक्ति के समक्ष समंजन की नई समस्याएँ खड़ी हो रही हैं। ग्राम्य जीवन की महिमा का गुणगान करने वाले व्यक्ति भी प्रायः व्यवहार में नगर की जिन्दगी को ही पसन्द करते हैं। कुल मिलाकर इसका परिणाम यह है कि शहरी व्यवसायों तथा उद्यमों पर अनावश्यक बोझ बढ़ रहा है तथा नगरों में बसने वाले व्यक्तियों के लिए

उपयुक्त प्रकार के उद्यम उपलब्ध कराने की समस्या तूल पकड़ रही है। इस पूरी परिस्थिति से भली प्रकार निपटने के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप में आयोजित निर्देशन सेवाओं का बड़ा महत्त्व है।

8. **पाश्चात्य एवं अन्य देशों का प्रभाव-**पाश्चात्य देशों यथा-अमेरिका, इंग्लैंड, यूरोप, रूस एवं जापान आदि का सांस्कृतिक, तकनीकी, शैक्षिक एवं वैज्ञानिक सहयोगों के माध्यम से भारतीय तौर-तरीकों पर स्पष्ट एवं अस्पष्ट रूपों में प्रभाव पड़ा है। हमारे युवा वर्ग कुछ मायने में इन देशों का अंधाधुंध अनुसरण करने लगे हैं। उन्हें तथा अन्य आयु वर्ग के लोगों को उचित परामर्श देने के लिए सम्यक् निर्देशन सर्वथा आवश्यक है।

9. **विशिष्टीकरण पर जोर-** आज जीवन के हर क्षेत्रों में विशिष्टीकरण को महत्त्व दिया जा रहा है। कोई भी ऐसी विधा या प्रशिक्षण का क्षेत्रों नहीं है जिनमें विशिष्टीकरण पर जोर न दिया जाता हो। सभ्यता के विकास, अनुसंधान एवं आविष्कारों के फलस्वरूप ज्ञान-विज्ञान, टेक्नोलॉजी तथा व्यवसायों में विशिष्टीकरण एक आम ढंग बन गया है। कहना न होगा कि विशिष्टीकरण को प्रभावी रूप में अपनाने के लिए विशेष प्रकार की प्रतिभाओं तथा कौशलों से युक्त व्यक्तियों की तलाश जरूरी है। इस सन्दर्भ में उपयुक्त प्रकार के निर्देशन का अपना विशिष्ट स्थान है।
10. **अवकाश का सदुपयोग-** छात्र जीवन के अलावा उद्योगों, कृषि कार्य, कार्यालयों, अस्पतालों तथा अन्य उद्यमों एवं सेवाओं में अवकाश या खाली समय को भली प्रकार व्यतीत करने की समस्या हमारे देश के अलावा अन्य देशों में भी है। हाँ, इतना अवश्य है कि हमारे यहाँ विभिन्न कर्मियों को अपने अवकाश को उचित ढंग से बिताने का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था नहीं की गयी है। निर्देशन के जरिए ठीक ढंग के कार्यकलापों का प्रावधान एवं उनके लिए उचित प्रतिभाओं के सम्बन्ध में विशेष तैयारी अपेक्षित है।
11. **विकासात्मक आवश्यकताओं की दृष्टि से-**निर्देशन की आवश्यकता व्यक्ति के जीवन के कुछ विशेष क्षणों में खासतौर से अनुभूत होती है। उसके व्यक्तिगत विकास तथा समंजन, शैक्षिक प्रगति एवं समायोजन, व्यावसायिक विकास एवं समंजन तथा विद्यालय छोड़ने के बाद अनुवर्तन या अनुश्रवण के महत्त्व को दृष्टिगत रखकर निर्देशन की आवश्यकता आम रूप में बनी रहती है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि निर्देशन की आवश्यकता को व्यक्ति के विकास के अतिरिक्त सामाजिक प्रगति, राष्ट्रीय समृद्धि एवं मानव-कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करने की दृष्टि से विशेष रूप से आँका जा सकता है। इस प्रकार व्यावसायिक, शैक्षिक एवं वैयक्तिक तीनों ही प्रकार के निर्देशन हर देश के लिए आवश्यक प्रतीत होते हैं।

1.7 कार्यक्षेत्र एवं महत्व

मानव एक प्रगतिशील प्राणी है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नित नई समस्याएँ आती हैं। इन समस्याओं के समाधान के बिना प्रगति करना असम्भव होता है। इसके लिए निर्देशन ही एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम समस्याओं का समाधान खोजकर प्रगति पथ पर अग्रसर हो सकते हैं।

निर्देशन का कार्य क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसके अन्तर्गत सेवार्थी, समूह, समस्याएँ तथा अनेकानेक शैक्षिक, व्यावसायिक तथा वैयक्तिक परिस्थितियाँ शामिल हैं। इस आधार पर निर्देशन के कार्यक्षेत्र की व्याख्या करना कठिन नहीं है। कार्यक्षेत्र की व्यापकता को देखते हुए भी छात्र के लिए इसका प्रमुख क्षेत्र शिक्षा, वैयक्तिक समस्याएँ तथा व्यवसायिक समस्याओं तक ही सीमित रहता है। अपने देश में निर्देशन का कार्यक्षेत्र अभी सीमित है क्योंकि अभी भी अपने देश में इसकी समुचित व्यवस्था नहीं है। निर्देशन के कार्यक्षेत्र को निम्न रूपों में व्यक्त किया जा सकता है-

१. **शैक्षिक निर्देशन-**इसके अन्तर्गत विविध पाठ्यक्रमों, उनके लिए छात्र में अपेक्षित योग्यता एवं अभिक्षमता का स्तर, रुचि तथा अभिवृत्ति, शिक्षण-अधिगम की व्यवस्था, विधियों एवं युक्तियों की सम्पूर्ण जानकारी करनी पड़ती है। विद्यार्थी को अपनी योग्यता, अभिरुचि एवं अभिक्षमता के अनुकूल कौन-सा विषय पढ़ना चाहिए, उसे कला, विज्ञान, कृषि, वाणिज्य, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, विधि, प्रबन्धन में से किसका चयन करन अधिक उपयोगी होगा? इस सम्बन्ध में प्रभावी विधियाँ क्या हो सकती हैं? आदि इस प्रकार के निर्देशन का प्रमुख कार्यक्षेत्र है। रुथस्ट्रैंग के अनुसार शैक्षिक निर्देशन (अ) पाठ्यकम सम्बन्धी चयन करने, (ब) आगे की शिक्षा के बारे में निर्णय लेने, और (स) श्रेणी सुधार के लिए आवश्यक सहयोग प्रदान करता है। इसके अलावा अपव्यय एवं अवरोधनकी समस्या का समाधान ढूँढ़ने में, अधिगम क्रिया को निरन्तर ध्यान में रखकर उपलब्धि स्तर को कार्यक्रमों की दिशा में जानकारी देकर उन्हें उसे प्राप्त करने के लिए प्रेरित करना, राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समृद्धि के कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए छात्रों को प्रेरित करना आदि के आधार पर शिक्षा के क्षेत्र में निर्देशन देकर हम विद्यार्थियों का उचित मार्गदर्शन व सहयोग कर सकते हैं।

२. **व्यावसायिक निर्देशन-** व्यावसायिक क्षेत्र में भी निर्देशन की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस प्रकार के निर्देशन से व्यक्ति को जीविका या व्यवसाय सम्बन्धी समस्याओं के समाधान हेतु निर्देशन दिया जाता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति को जीविकोपार्जन के माध्यम या व्यवसाय के चयन करने, व्यवसाय हेतु तैयारी करने, उसमें प्रविष्ट होने, समायोजन प्राप्त करने में सहयोग प्रदान किया जाता है।

मायर्स ने लिखा है, व्यावसायिक निर्देशन मूलतः युवकों की अमूल्य क्षमताओं तथा विद्यालयों द्वारा उन्हें प्रदान किये जाने वाले मँहगे प्रशिक्षण को संरक्षित करने का प्रयत्न है। यह मानवीय संसाधनों में से सर्वाधिक कीमती संसाधन को संरक्षित करने हेतु व्यक्ति को वहाँ (उस क्षेत्र में) निवेश करने और उपयोग करने में सहयोग प्रदान करना है जहाँ उसे अपने लिए सर्वाधिक प्रसन्नता एवं सन्तुष्टि और समाज को सर्वाधिक लाभ हो। स्पष्ट है कि व्यावसायिक निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति तथा समाज या व्यावसायिक संगठन दोनों के हितों की रक्षा करता है। जहाँ व्यक्ति की सन्तुष्टि और प्रगति महत्त्वपूर्ण है वहीं समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति, राष्ट्रीय माँग की पूर्ति और व्यावसायिक संगठन के हितों की पूर्ति भी समान रूप में महत्वपूर्ण है।

३. **वैयक्तिक निर्देशन**-वैयक्तिक समस्याओं के क्षेत्र में व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान हेतु भी निर्देशन कार्यक्रमों का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। मैथ्यूसन के अनुसार, व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्तियों को चयन करने, नियोजन और समायोजन तथा प्रभावशाली आत्म निर्देशन करने और व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं का सामना करने में प्रदान किये जाने वाले व्यवस्थित व्यावसायिक सहयोग की प्रक्रिया है। निर्देशन के इस क्षेत्र के अन्तर्गत (अ) व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान करने में, (ब) पारिवारिक जीवन की समस्याओं के समाधान में, (स) सांवेगिक समस्याओं तथा संकट के समय में सदैव भावात्मक व मानसिक सन्तुलन बनाये रखने में तथा (द) अवकाश के समय का सदुपयोग करने में, उपयोग किया जाता है।

आधुनिकता से प्रभावित इस संसार की बढ़ती हुई जटिलताओं और वैयक्तिक भिन्नताओं के कारण निर्देशन का महत्व निरन्त बढ़ता जा रहा है। निर्देशन वास्तव में एक सेवा है जो व्यक्ति को स्वयं के बारे में जानने अर्थात् यह ज्ञान प्राप्त करने में कि उसकी मनोवृत्तियाँ, रुचियाँ एवं योग्यताएँ क्या हैं, उसकी भौतिक, मानसिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत आवश्यकताएँ क्या हैं, सहायता प्रदान करती है तथा इसके साथ-साथ व्यक्ति को अधिकतम विकास प्राप्त करने में भी सहायक होती है। निर्देशन किसी व्यक्ति की आयु अथवा अवस्था से बँधा हुआ नहीं होता है। यह जीवनपर्यन्त विद्यमान रहने वाली आवश्यकता है। निर्देशन बच्चों, किशोरों, वयस्कों एवं वृद्धों सभी के लिए महत्त्वपूर्ण होताहै। निर्देशन का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति होता है, उसकी समस्या नहीं। उसकी समस्याओं का अध्ययन, निर्देशन बाद में करता है, पहलओं तो व्यक्तिकी शक्ति तथा योग्यताओं का अध्ययन करता है।

यूनाइटेड ऑफिस ऑफ एजुकेशन ने लिखा है, निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति का परिचय विभिन्न उपायों से, जिनमें विशेष प्रशिक्षण भी सम्मिलित है, तथा जिनके माध्यम से व्यक्ति को प्राकृतिक शक्तियों का बोध भी हो, कराती है जिससे वह अधिकतम व्यक्तिगत एवं सामाजिक हित कर सके।

व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास वातावरण के सम्पर्क में ही सम्भव है। इसलिए व्यक्तित्व के सन्तुलित विकास तथा जीवन की सफलता हेतु आवश्यक हो जाता है कि वह स्वयं अपने आपको तथा वातावरण को समझे जिससे

वह विभिन्न परिस्थितियों से समायोजन स्थापित कर सके, इसमें निर्देशन की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वर्जीनिया के शिक्षकों के एक प्रतिनिधि समूह द्वारा तैयार किये गये प्रारूप के अनुसार निर्देशन का महत्व या निर्देशन का होना आवश्यक है-

- प्रत्येक व्यक्ति के लिए ऐसा स्थान प्राप्त करना जिसमें वह व्यक्तिगत प्रसन्नता प्राप्त कर सके।
- नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के सम्बन्ध में जागरुकता का विकास करना।
- व्यक्ति के रूप में मान्यता एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करना।
- प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध में यह अनुभव करना कि वह जिस समूह का सदस्य है उसमें अपना योगदान दे रहा है।
- अपने आपको, अपनी योग्यताओं को, अपनी सीमाओं को और अपनी क्षमताओं को समझना।
- अपने विकास के अवसरों और अपनी योग्यता एवं अनुभव का उपयोग करने हेतु।
- उत्साह, प्रेम और ज्ञान के लिए।

समाज में होने वाले परिवर्तनों के अनुकूल स्वयं को ढालने की दिशा में साधन-सम्पन्नता और आत्म निर्देशन का विकास करने हेतु । स्वतंत्र रूप से निर्देशन का जीवन में कोई स्थान नहीं है। यह केवल एक प्रक्रम है जिसका उद्देश्य सामाजिक एवं पारिवारिक विकास में सहायता पहुँचाना है। निर्देशन की प्रक्रिया निरन्तर गतिशील रहती है तथा व्यक्ति को इस तरह सहायता पहुँचाई जाती है कि व्यक्ति स्वयं को समझे, क्षमताओं, रुचियों, अभियोग्यताओं का अधिकतम उपयोग कर विकसित हो सके तथा परिवेश में विद्यमान विभिन्न परिस्थितियों में अपना समायोजन स्थापितकर सके। स्पष्ट है कि निर्देशन हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है।

1.8 निर्देशन के प्रकार

आधुनिक युग में हुई वैयक्तिक प्रगति के परिणामस्वरूप औद्योगिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में द्रुत गति से परिवर्तन हुए हैं। प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति में निर्धारित मानदण्डों के आधार पर नवीन मूल्यों का प्रस्फुटन निरन्तर होता जा रहा है। व्यक्ति के सम्मुख यह एक जटिल समस्या उपत्न हो गयी है कि वह किस प्रकार के मूल्यों एवं आदर्शों को अपनाते हुए प्रगति की दिशा में आगे बढ़े। विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों के स्वरूप, शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यवसाय, अवकाश के समय का सदुपयोग, पारिवारिक सम्बन्ध आदि क्षेत्रों में पहल की अपेक्षा आज अनेक समस्याएँ उत्पन्न होने लगी हैं। निर्देशन व्यक्ति के जीवन के सभी क्षेत्रों में बेहतर समायोजन प्राप्त करने में सहायक होता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए निर्देशन पर विचार करने वाले अनेक विद्वानों ने निर्देशन के कई प्रकार बताये हैं। हम यहाँ प्रकृति के आधार पर व क्षेत्र के आधार पर निर्देशन के कुछ महत्वपूर्ण प्रकारों पर प्रकाश डालेंगे।

१. **प्रकृति के आधार पर** -निर्देशन की प्रकृति के आधार पर निर्देशन दो प्रकार का हो सकता है-

i. **व्यक्तिगत निर्देशन** -जब निर्देशन के द्वारा किसी एक ही व्यक्ति की समस्याओं का समाधान निकालने में सहयोग किया जाता है तो वह व्यक्तिगत निर्देशन का स्वरूप होता है। इसमें निर्देशन सेवा का लक्ष्य होता है कि उसी एक व्यक्ति को उसकी समस्या का समाधान निकालने में उसका सहयोग करना, उसकी विभिन्न प्रकार की समस्याएँ हो सकती हैं-

a) शैक्षिक समस्या
b) सामाजिक समस्या
c) वैवाहिक समस्या
d) स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या
e) मानसिक समस्या
f) समय सदुपयोग सम्बन्धी समस्या
g) पारिवारिक समस्या
h) धार्मिक समस्या
i) अन्य समस्याएँ

ii. **सामूहिक निर्देशन**-निर्देशकर्त्ता समस्याओं के समाधान में सहयोग जब किसी समूह का करता है तो इस प्रकार के सामूहिक सहयोग वाले निर्देशन को सामूहिक निर्देशन कहा जाता है। इसका उपयोग निम्न समूहों में किया जाता है-

a) किसी कक्षा विशेष में
b) किसी आयु वर्ग के व्यक्तियों में
c) किसी संगठन के समूह में
d) किसी दल के कार्यकर्त्ताओं में
e) किसी परिवार को
f) सामूहिक उपचार के रूप में

२. **क्षेत्र के आधार पर निर्देशन के प्रकार**-निर्देशन के क्षेत्र अथवा उद्देश्य के आधार पर भी निर्देशन के प्रकार निर्धारित किये जा सकते हैं, जो मुख्य रूप से निम्नवत् हैं-

1. **शैक्षिक निर्देशन**-शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थी जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रत्येक विद्यार्थी की अपनी अलग-अलग समस्याएँ होती हैं। इन समस्याओं के कारण विद्यालयीय वातावरण में अपने को समायोजित करने में हर छात्र सक्षम नहीं होता है । अतएव विद्यार्थी के विकास के लिए समुचित परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए तथा विकास के अवसर पैदा करने के लिए तथा विद्यालयीय परिवेश से सामंजस्य स्थापित करने हेतु शैक्षिक निर्देशन आवश्यक है ।

इसी सम्बन्ध में जीन्स ने लिखा है कि शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध छात्रों को प्रदान की जाने वाली उस सहायता से है जो उन्हें विद्यालयों, पाठ्यक्रमों एवं शिक्षालय के जीवन से सम्बद्ध चुनावों एवं समायोजनों के लिए अपेक्षित है। शैक्षिक निर्देशन के चार प्रमुख कार्य हैं-विद्यार्थी की क्षमता, रुचि एवं साधनों के अनुरूप शैक्षिक योजना का निर्माण करना, विद्यार्थी की भावी सम्भावनाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना, शैक्षिक कार्यक्रम में वांछित प्रगति हेतु सहायक होना तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को भलीभाँति पूर्ण करने के लिए विद्यालय कर्मचारियों, पाठ्यचर्चाओं एवं प्रशासनिक परिवर्तनों से सम्बन्धित सुझाव देना। शैक्षिक निर्देशन का मुख्य लक्ष्य, विद्यार्थियों में वांछित जागरुकता एवं संवेदनशीलता उत्पन्न करना है, जिससे वे उपयुक्त अधिगम लक्ष्यों, उपकरणों, परिस्थितियों आदि का स्वयं चयन कर सकें तथा विद्यालयीय परिवेश से सामंजस्य स्थापित कर सकें।

2. **व्यावसायिक निर्देशन-**व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर्गत व्यक्ति में निहित क्षमताओं, योग्यताओं तथा व्यावसायिक जगत की परिवर्तित परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं का मूल्यांकन किया जाता है। व्यवसाय चयन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु निर्देशन प्रदान की जाने वाली यह इस प्रकार की सहायता है, जो व्यावसायिक अवसरों के लिए अपेक्षित योग्यताओं को ध्यान में रखकर प्रदान की जाती है। व्यावसायिक निर्देशन किसी भी व्यक्ति को व्यवसाय चुनने, उसके लिए तैयारी करने, उसमें प्रवेश करने तथा दक्षता प्राप्त करने में सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया है। डोनाल्ड सुपर के अनुसार-व्यावसायिक निर्देशन का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह अपने व्यवसाय से समुचित समंजन कायम कर सके, अपनी निहित मानवीय शक्ति का प्रभावी उपयोग कर सके तथा उपलब्ध सुविधाओं द्वारा समाज का आर्थिक विकास कर सकने में सक्षम हो सके। व्यावसायिक निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य व्यावसायिक क्षेत्र में व्यक्ति को सामंजस्य स्थापित करने योग्य बनाना है। व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत, व्यवसाय चार्ट, व्यवसाय विवरण पत्रिका, वार्ता एवं अन्य माध्यमों की सहायता से सेवार्थी की व्यावसायिक रुचि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाती है। आज के वैज्ञानिक युग में व्यवसायों की विविधता, विशिष्टीकरण की आवश्यकता, श्रम व उद्योग की परिवर्तित परिस्थितियों, मानवीय शक्ति के संरक्षण एवं समुचित उपयोग और उत्पादन में गुणवत्ता की प्रसार की दृष्टि से व्यावसायिक निर्देशन बहुत महत्वपूर्ण है।

3. **व्यक्तिगत निर्देशन-**निर्देशन-कार्य व्यक्तिगत रूप में ही सम्पन्न होता है, चाहे वह व्यावसायिक निर्देशन हो या शैक्षिक या अन्य किसी प्रकार का निर्देशन। व्यक्तिगत निर्देशन का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के मानसिक, सामाजिक व भौतिक पक्षों में सामंजस्य स्थापित करना होता है। व्यक्तिगत समायोजन एवं व्यक्तिगत कुशलता के आधार पर ही व्यक्ति को अपने सामाजिक परिवेश के साथ समायोजन स्थापित करने, पारस्परिक सम्बन्धों को विकसित करने तथा जीवन को सुखद बनाने में सफलता प्राप्त हो पाती है। परिवार, समाजिक समस्याओं, मानसिक वेदनाओं व स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान हेतु

व्यक्तिगत निर्देशन आवश्यक है। क्रो तथा क्रो ने लिखा है, व्यक्तिगत निर्देशन का तात्पर्य व्यक्ति को प्राप्त उस सहायता से है जो उसके जीवन के सभी क्षेत्रों तथा अभिवृत्तियों के विकास को दृष्टिगत रखकर बेहतर समायोजन के प्रति निर्दिष्ट होती है । मानव जीवन लक्ष्य केवल शैक्षिक एवं व्यावसायिक समायोजन प्राप्त करना ही नहीं, बल्कि व्यक्तिगत जीवन में सामंजस्य, तालमेल एवं संगति लाना भी है। हमारी सामाजिक व्यवस्था ऐसी जटिल बनती जा रही है कि शैक्षिक दृष्टि से उच्च कोटि की उपलब्धि वाला तथा व्यावसायिक तौर पर सुप्रशिक्षित व्यक्ति भी अपने व्यक्तिगत विकास जैसे-सांवेगिक, सामाजिक, चारित्रिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों के पक्षों में अत्यन्त कमजोर हो सकता है। सन्तुलित रूप में विकास न होने से व्यक्ति में अनेक प्रकार की ग्रंथियाँ एवं मानसिक स्वास्थ्य की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो उसके शैक्षिक तथा व्यावसायिक जीवन में भी तनाव, विसंगतियाँ, कुसमायोजन तथा अवरोध ला सकती हैं। ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति को व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता होती है ।

1.9 सारांश

निर्देशन एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति की सहायता इस प्रकार की जाती है जिससे वह अपने निर्णय ले सके, निष्कर्ष निकाल सके तथा अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सके। निर्देशन के माध्यम से व्यक्ति अपने व्यक्तित्व, अपनी क्षमता, योग्यता तथा मानसिक स्तर का ज्ञान प्राप्त करता है। वह व्यक्ति में निहित सम्भावनाओं को सामाजिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में पूर्ण विकसित होने में सहायता देने का प्रक्रम है। जोन्स के अनुसार, निर्देशन का अर्थ है-प्रदर्शन करना, इंगित करना, सूचित करना तथा पथप्रदर्शन करना और इसका अर्थ सहायता देने से अधिक है । व्यक्ति के महत्व की स्वीकृति स्वयं निर्देशन की क्षमता का विकास, निर्देशन को जीवनपर्यन्त चलने वाला प्रक्रम मानना, सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर दृष्टि रखना, वस्तुगत अध्ययन प्रणाली, लचीलापन, उपबोध्य का सर्वांगीण विकास, गोपनीयता एवं नैतिक आचरण संहिता का पालन, वैयक्तिक भिन्नताओं का ध्यान तथा निर्देशन कार्य के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता आदि निर्देशन के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं जिन्हें लगभग सभी विद्वानों ने किसी किसी रूप में स्वीकार किया है।

निर्देशन की धारणा है- व्यक्ति की अधिकतम क्षमता तक उसका विकास, उसके सम्मुख उपस्थित समस्याओं के समाधान में सहायता करना तथा उचित समायोजन की शक्ति एवं प्रवृत्ति का विकास करना, व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुरूप शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरों का ज्ञान कराना । व्यक्ति के विकास एवं समाज में समायोजन के लिए निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है। यह कई दृष्टियों से आवश्यक होती है। प्रत्येक समाज में किसी न किसी तरह का निर्देशन अवश्य पाया जाता है। परिवर्तित पारिवारिक सन्दर्भों, जनसंख्या विस्फोट तथा मानवीय संसाधन के विस्तार, शैक्षिक एवं सामाजिक आकांक्षाओं, परिवर्तित औद्योगिक एवं तकनीकी सन्दर्भों, राजनीतिक परिवर्तन, नगरीकरण, विशिष्टीकरण, पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों, अवकाश के सदुपयोग एवं व्यक्ति की विकासात्मक आवश्यकताओं की दृष्टि से निर्देशन की आवश्यकता को विशेष महत्व दिया जा रहा है।

व्यक्तिगत भिन्नताएँ, एक ही व्यक्ति की अलग-अलग क्षेत्रों में असमान प्रगति, भावात्मक समायोजन एवं व्यक्तित्व का उचित विकास वे मनोवैज्ञानिक तत्व हैं जो निर्देशन को आवश्यक बनाते हैं।

निर्देशन का कार्य क्षेत्र व्यापक है। इसके अन्तर्गत सेवार्थी से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्यों, सूचनाओं, विवरणों तथा अवस्थाओं का विश्लेषण एवं अध्ययन, विभिन्न प्रकार के व्यवसायों एवं उद्यमों की सर्वेक्षणात्मक एवं मूल्यांकनपरक प्रस्तुति तथा निर्देशन के उपकरणों, प्रविधियों एवं युक्तियों का सेवार्थी के अनुरूप सन्दर्भों में विकास सम्मिलित है। वर्तमान बदलते हुए परिवेश में निर्देशन का अत्यधिक महत्व है। सेवार्थी की विभिन्न योग्यताओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना तदनुसार उसे निर्देशन प्रदान करना ताकि वह अपनी क्षमताओं का अधिकतम उपयोग कर सके।

निर्देशन व्यक्ति को उसकी समस्याओं के समाधान में सहायता पहुँचाने का प्रक्रम है। जीवन की समस्याओं का सम्बन्ध विविध क्षेत्रों से होता है। इन क्षेत्रों को दृष्टि में रखते हुए विद्वानों ने निर्देशन के अनेक प्रकार बताये हैं। इनमें तीन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शैक्षिक निर्देशन जिसमें विद्यार्थियों को उपयुक्त अध्ययन विधियों एवं विषयों के चयन, पाठ्यक्रमों के निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप सही गतिविधियों में लगे रहने तथा अपने अधिगम की क्रियाओं को स्वयं निर्देशित करने के लिए दिशा-निर्देश उपलब्ध कराना प्रमुख ध्येय रहता है। व्यावसायिक निर्देशन में सवोर्थी को उसकी योग्यता, अभिक्षमता, रुझान एवं रुचि को दृष्टिगत रखकर उपयुक्त व्यवसाय चुनने में सहायता की जाती है। जबकि वैयक्तिक निर्देशन में व्यक्ति को समायोजन सम्बन्धी समस्याओं के हल प्राप्त करने में उचित मार्गदर्शन देने की व्यवस्था की जाती है।

1.10 शब्दावली

अभिक्षमता-शिक्षा पूर्व विशिष्ट योग्यता-वह वर्तमान योग्यता जिसके आधार पर यह निश्चित किया जा सके कि व्यक्ति आगे को मिलने वाली किसी विशिष्ट क्षेत्र की शिक्षा में अथवा उस विशिष्ट क्षेत्र की शिक्षा के पश्चात् उससे सम्बन्धित व्यवसाय में पर्याप्त सफलता प्रापत कर सकेगा।

अभिरुचि-एक प्रकार की भावात्मक अनुभूति जो किसी वस्तु अथवा क्रिया-विशेष की ओर ध्यान के साथ संलग्न करती है।

मूल्य-व्यक्ति या समूहों द्वारा माना जाने वाला विचार कि क्या जरूरी है, सही है, अच्छा है या बुरा।

1.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर

1. निर्देशन का अर्थ है-

(क) क्षमता का विकास (ख) सम्बन्धों का विकास

(ग) विकास में सहायता देने वाला प्रक्रम (घ) इनमें से कोई नहीं

2. निर्देशन आवश्यक है-

क) मानव की क्षमता का विकास करने के लिए (ख) मानव जीवन की जटिलता को हल करने के लिए

(ग) व्यक्ति के निजी गुणों के विकास के लिए (घ) उपरोक्त सभी के लिए

3. निर्देशन व्यक्ति की समस्याओं को हल करता है-

(क) शैक्षिक (ख) व्यावसायिक

(ग) वैयक्तिक (घ) उपरोक्त सभी

4. निर्देशन की बुनियादी मान्यता है-

(क) मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है (ख) मनुष्य का बुनियादी स्वरूप आध्यात्मिक है

(ग) मनुष्य को अपने एवं दूसरों से तालमेल बनाये रखना पड़ता है (घ) मनुष्य के लिए जीवन एक संघर्ष है

5. शैक्षिक निर्देशन का कार्य है-

(क) शैक्षिक सहायता (ख) पाठ्यक्रम चयन में सहयोग

(ग) विषय चयन में सहायता (घ) उपरोक्त सभी

6. व्यक्तिगत निर्देशन में हल की जाती है-

(क) शिक्षा की समस्या (ख) रोजगार की समस्या

(ग) स्वास्थ्य की समस्या (घ) उपरोक्त सभी

7. व्यक्ति के विकास में सहायक होगा निर्देशन का मुख्य सिद्धान्त कहा जाता है।

(क) सत्य (ख) असत्य

8. निर्देशन की आवश्यकता सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में महसूस होती है।

(क) सत्य (ख) असत्य

उत्तर-1. (ग), 2. (घ), 3. (घ), 4. (ग), 5. (घ), 6. (घ), 7. सत्य, 8. सत्य।

1.12. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (प्रथम संस्करण-2010), आधुनिक परामर्शन मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी।

२. अमरनाथ रायए वं मधु अस्थाना (2006), निर्देशन एवं परामर्शन, मोतीलाल-बनारसीदास, वाराणसी।

३. उपाध्याय, राधाबल्लभ एवं जायसवाल, सीताराम (2013-14), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

४. गुप्ता, महावीर प्रसाद एवं गुप्ता, ममता (2007), शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।

५. एस0एन0 शर्मा एवं एम0के0 सोलंकी (प्रथम संस्करण-2011), निर्देशन एवं परामर्श, माधव प्रकाशन, ए-23, इन्द्रपुरी कॉलोनी, न्यू आगरा, आगरा।

६. शाह आलम एवं मोहम्मद गुफरान (2011), निर्देशन एवं परामर्श का मूलभूत आधार, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

1.13 **निबन्धात्मक प्रश्न**

१. निर्देशन से आप क्या समझते हैं?

२. निर्देशन के सिद्धान्तों का उल्ल्ोख कीजिए।

३. निर्देशन के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

४. निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।

५. व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ बताते हुए बताइए कि यह क्यों आवश्यक है?

इकाई-2: निर्देशन एवं परामर्श में परामर्शदाता की भूमिका और एक अच्छे परामर्शदाता की विशेषताएँ (Role of Counselors in Guidance & Counseling and Characteristics of a Good Counselor)

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 परामर्श सेटिंग और निर्देशन एवं परामर्श में परामर्शदाता की भूमिका
2.3 एक अच्छे परामर्शदाता की विशेषताएँ
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर
2.7 निबन्धात्मक प्रश्न
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज में रहते हुए व्यक्ति के समक्ष किसी न किसी प्रकार की समस्याओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। व्यक्ति समस्या समाधान के उपरान्त ही आगे बढ़ पाता है। इन समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करने की दिशा में निर्देशन प्रक्रिया से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की सेवाओं को संगठित किया जाता है। निर्देशन से सम्बन्धित सेवाओं के अंतर्गत परामर्श सेवा सर्वाधिक महत्वपूर्ण व प्राचीन सेवा है। इसलिए परामर्श सेवा को निर्देशन सेवाओं का हृदय कहा जाता है। प्राचीन समय में परामर्श का कार्य अपेक्षाकृत सहज था, विद्यालय में शिक्षकों एवं समाज के अन्य व्यक्तियों के द्वारा परामर्श प्रदान किया जाता है, परन्तु वर्तमान समय में समाज का स्वरूप जटिल हो गया है। आज व्यक्ति के समक्ष अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं, इनका समाधान एक दुरूह कार्य हो गया है । समस्याओं के स्वरूप के आधार पर परामर्श की प्रक्रिया भी परिवर्तित हो चुकी है । अब इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए अधिक योग्य, कुशल एवं प्रशिक्षित विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है । परामर्श का शाब्दिक अर्थ है-पूछताछ, पारस्परिक तर्क-वितर्क या विचारों का पारस्परिक आदान-प्रदान। कार्ल रोज़र्स ने परामर्श को परिभाषित करते हुए कहा है कि- ''परामर्श एक निश्चित रूप से निर्मित स्वीकृत सम्बन्ध है जो उपबोध्य को अपने को उस सीमा तक समझने में सहायता करता है जिसमें वह अपने नवीन ज्ञान के प्रकाश में ठोस कदम उठा सके।''

परामर्श के आशय के सम्बन्ध में एक विशिष्ट पक्ष यह भी है कि परामर्श की प्रक्रिया के द्वारा परामर्श प्राप्तकर्ता अथवा उपबोध्य पर किसी निर्णय को थोपा नहीं जाता है, वरन् उसकी सहायता इस प्रकार की जाती है कि वह स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हो सके। परामर्श का उद्देश्य उपबोध्य की सहायता करना होता है जिससे वह स्वतंत्र रूप से अपनी समस्या का समाधान कर सके। परामर्श एक व्यावसायिक कार्य है, जिसे एक पर्याप्त प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा ही सम्पन्न कराना चाहिए। बुनियादी तौर पर परामर्श के अंतर्गत व्यक्ति को समझना और उसके साथ कार्य करना होता है जिससे कि परामर्श दाता को उसकी आवश्यकताओं, अभिप्रेरणाओं और क्षमताओं की जानकारी हो और फिर उसे इनके महत्व को जानने में सहायता दी जाये।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बातों के बारे में जान जायेंगे-

- परामर्श व्यस्था एवं परामर्श तथा निर्देशन में परामर्श दाता की भूमिका
- एक अच्छे परामर्श दाता की विशेषताएँ

2.2 परामर्श सेटिंग और निर्देशन एवं परामर्श में परामर्श दाता की भूमिका

परामर्श सेटिंग सभी प्रकार की समस्याओं तथा समस्त व्यक्तियों के लिए लगभग एक समान ही होती है और यह उसी समय से आरम्भ हो जाती है जब कोई उपबोध्य किसी परामर्श केन्द्र पर परामर्श हेतु पहुँचता है। उपबोध्य अपनी वैयक्तिक मनोवृत्तियाँ, रुचियाँ तथा स्वयं के एक प्रत्यय के साथ आता है। उसके पास विभिन्न समस्याएँ जैसे आत्मस्वीकृति, शिक्षा, व्यावसायिक चयन व समायोजन से सम्बन्धित समस्याएँ हो सकती हैं। बेन्जामिन ने परामर्श में बाह्य दशाओं को अधिक महत्व दिया है। भौतिक सेटिंग का काफी महत्व है। परामर्श कार्य सामान्यतः किसी कक्ष में सम्पादित किए जाते हैं। कक्ष ऐसा होना चाहिए जो आरामदायक तथा आकर्षक हो और वहाँ उचित प्रकाश व्यवस्था हो तथा ध्वनिरोधी भी हो तो अधिक बेहतर है। परामर्श सेटिंग में दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष परामर्श दाता तथा उपबोध्य के मध्य दूरी है। यह उसके भावी सम्बन्धों को प्रभावित करता है। 30 से 90 इंच की दूरी सामान्यतया अपेक्षित दूरी है। बेन्जामिन का मानना है कि परामर्श सेटिंग में दो कुर्सियां तथा एक मेज होनी चाहिए जो इस तरह से व्यवस्थित हो कि परामर्शी परामर्श दाता को सीधे सामने या बिना मुड़े देखे। इन सभी के लिए कोई सख्त नियम नहीं हैं बल्कि परामर्श दाता को केवल यह ध्यान रखना होता है कि भौतिक व्यवस्था उसके तथा परामर्शी दोनों के लिए आरामदायक हो। परामर्श निर्देशन का एक अंग है। निर्देशन का क्षेत्र व्यापक है जबकि परामर्श का संकीर्ण। निर्देशन और परामर्श दोनों ही पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित और कुशल व्यक्ति द्वारा प्रदान किया जाता है जिसमें परामर्शदाता की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। जोन्स के विचार से परामर्श दाता वह है जो परामर्श का कार्य करता है।

राव (1967) का कहना है कि परामर्श दाता की भूमिका परिवर्तित हुई है। पहले कुछ विशेषज्ञ अपने छात्रों को, अपने कर्मचारियों को परामर्श देने का कार्य किया करते थे, किन्तु अब प्रशिक्षित परामर्श दाताओं ने यह कार्य प्रारम्भ किया है। परामर्शदाता एक परामर्श की भूमिका में दिखाई देने लगा है जो शैक्षिणिक कर्मचारियों व अन्य लोगों को परामर्श में सहायक कौशलों को सिखाने में लगा है। एक परामर्शदाता परामर्श देने में निम्न प्रयास करता है-

1. विद्यार्थियों की समस्याओं तथा उनके वैयक्तिक विकास के प्रति शिक्षकों की सूक्ष्मग्राहिता में वृद्धि करना।
2. मानव की समस्या समाधान में सीखने के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुप्रयोग का प्रदर्शन।
3. उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं के शैक्षिणिक सदस्यों की प्रभावशीलता में सुधार।

उपयुक्त भूमिकाओं के अतिरिक्त परामर्श सेवा क्षेत्र में नयी भूमिकाओं का भी उद्भव हुआ है। पहले परामर्श युवाओं से, विशेष रूप से विद्यालय युवाओं से ही सम्बन्धित था, लेकिन अब अनेक देशों सहित भारतवर्ष में भी वृद्धों की समस्याओं के समाधान हेतु परामर्श सेवा का विस्तार हुआ है। इस तरह अब परामर्श दाता की भूमिका केवल युवाओं को परामर्श देने तक ही सीमित न रहकर प्रौढ़ व वृद्ध के लोगों को भी परामर्श देने की हो गयी है। इस समूह में महिलाएँ, विशेष रूप से युवा एवं मध्य प्रौढ़, ऐसे विधार्थी जो अच्छा नहीं कर पा रहे हैं, पारिवारिक परामर्श, अल्पसंख्यक तथा अप्रवासी लोग भी हैं, जिन्हें परामर्श की आवश्यकता है। परामर्श की प्रक्रिया को उचित ढंग से संचालित करने में परामर्श दाता की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। परामर्श की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को विशिष्ट एवं सुनिश्चित परिस्थितियों में ही संचालित किया जा सकता है। विलियमसन ने अपनी पुस्तक 'निर्देशन के सिद्धान्त' में परामर्श दाता की भूमिका का उल्लेख किया है-

1. सूचनाओं को एकत्र करना और परीक्षण करना।
2. विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन लाने में सहायक।
3. परामर्श दाता द्वारा प्रश्न पूछना।
4. उपबोध्य के सामाजिक वातावरण के विषय में सूचना देना।
5. निर्णय प्रक्रिया के विषय में सूचना प्रदान करना।
6. परामर्श दाता सलाहकार के रूप में।
7. अन्य लोगों के साथ परामर्श दाता का वार्तालाप।
8. सम्पूर्ण व्यक्ति हेतु आदर।
9. मानकीय आँकड़े एककत्रित करना।
10. अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के विषय में सूचना देना।

परामर्शदाता के प्रमुख कर्त्तव्यों का उल्लेख मायर्स ने निम्नवत् किया है-

1. परामर्श के लिए समय का निर्धारण करना।
2. परामर्श के लिए उचित प्रबन्ध करना।
3. परामर्श की तैयारी करना।
4. परामर्श देना।
5. परामर्श से सम्बन्धित अभिलेख सुरक्षित रखना।

स्टीवार्ट ने परामर्शदाता की भूमिका के विषय में निम्नलिखित बातों का उल्ल्ोख किया है-

1. उपबोध्य से सम्बन्धित आधार सामग्री को एकत्र करना।
2. सेवार्थी की आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझना।
3. सेवार्थी को स्वयं के अनुभवों को समझने में सहायता प्रदान करना।
4. विद्यालय घर कक्ष में सामंजस्य स्थापित करना।
5. विद्यालय के कार्यों के मध्य तालमेल बनाये रखना।
6. उपबोध्य से मुलाकात करना।
7. शिक्षा सम्बन्धी उन्नति एवं सामाजिक मेल-जोल के मध्य सामंजस्य उत्पन्न करना।
8. समूह में निर्देशन प्रदान करना।

परामर्शदाता की प्रकृति एवं परामर्श प्रक्रिया को ध्यान में रखकर जोन्स ने परामर्शदाता की भूमिका पर प्रकाश डाला है-

1. एक व्यक्ति की समस्या से सम्बद्ध सूचना की प्रयोजनवश व्याख्या करने की आवश्यकता।
2. ध्यान पूर्वक सुनने, जाँच करने, तथा सलाह की प्रक्रिया की आवश्यकता।
3. जिन समस्याओं के समाधान तक विद्यार्थी या व्यक्ति आसानी से न पहुँच सकें उसमें सहायक उपकरणों को गतिशील करना।
4. उन समस्याओं की जानकारी जागृत करने की आवश्यकता जो वर्तमान तो है लेकिन जिन्हें अभी स्वीकृत नहीं किया गया है।
5. स्वीकार की गई किन्तु समझी न जा सकने वाली समस्याओं को परिभाषित करने की आवश्यकता।
6. जब विद्यार्थी किसी समस्या का समाधान खोजने में सहायता की आवश्यकता चाह रहा हो तब रचनात्मक कार्यवाही की आवश्यकता।
7. निश्चित गम्भीर अप-समायोजनों में सहायता की आवश्यकता।

2.2 परामर्श सेटिंग और निर्देशन एवं परामर्श में परामर्श दाता की भूमिका

निर्देशन एवं परामर्श की सफलता में एक अच्छे परामर्श परिवेश और परामर्शदाता की विशेषताएँ, शिक्षण, प्रशिक्षण, अनुभव, दक्षता, व्यावसायिक अभिवृत्ति, नैतिक आचरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परामर्शदाता में शैक्षिक अभिक्षमता, रुचि, क्षमता एवं उपयुक्त व्यक्तित्व गुण होना चाहिए। परामर्शदाता की रुचियाँ और क्षमताएँ लोगों के साथ कार्य करने के लिए उपयुक्त होनी चाहिए। व्यक्तिगत गुणों की दृष्टि से परामर्शदाता में सामाजिक सम्बन्धों की परिपक्वता, अन्य व्यक्तियों के विचारों और अभिवृत्तियों के प्रति संवेदनशीलता, विनोदी स्वास्थ्य और लक्ष्य के प्रति तत्परता, अच्छा एवं आकर्षक शरीर गठन, मीठी वाणी और लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने का गुण होना चाहिए । विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने परामर्शदाताओं की अनेक विशेषताएँ बताई हैं। रोपबर ने इन सभी विशेषताओं को संकलित करते हुए एक अच्छे परामर्शदाता की विशेषताओं को निम्नवत् व्यक्त किया है-

1. **पारस्परिक सम्बन्ध-**परामर्शदाता का व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए जिससे वह दूसरों को अपनी ओर तुरन्त आकर्षित कर ले । परामर्शी को सहानुभूतिपूर्वक समझे, लोगों में रुचि ले , व्यक्तियों से मिलने-जुलने की योग्यता, दूसरों के दृष्टिकोणों के प्रति संवेदनशील होना, धैर्य, ईमानदारी, चतुरता, दूसरों का विश्वास प्राप्त कर सकने की क्षमता, दूसरों की आवश्यकताओं का ध्यान, परामर्शी की निजता (च्तपअंबल) का ध्यान रखना, लोगों को समझना और स्वीकार करना, आपसी सम्बन्धों में सौहार्द्र बनाये रखना, आदि गुण होने चाहिए।
2. **व्यक्तिगत सामंजस्य-**परामर्शदाता में वैयक्तिक समायोजन की क्षमता होनी चाहिए । अपनी कमजोरियों का ज्ञान, पिछले अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता, आलोचना को स्वीकार करने की सामर्थ्य, आत्मसम्मान, अपने विषय में ज्ञान, हास्य-विनोद का पुट, परिपक्वता, बातों को स्पष्ट रूप से समझने की योग्यता, परिपक्वता, भावात्मक स्थिरता, लचीलापन, आत्मविश्वास आदि वैयक्तिक समायोजन में सहायक होते हैं। अन्य व्यक्तियों का आदर करने का गुण होना चाहिए।
3. **शैक्षिक पृष्ठभूमि तथा विद्वता की शक्तियाँ-**उच्च शैक्षिक पृष्ठभूमि तथा शैक्षिक विद्वता का सम्मिलित होना आवश्यक है। एक अच्छे परामर्शदाता में कार्य क्षमता, बुद्धि, विद्वता के प्रति रुचि, तथ्यों का समादर, व्यावहारिक निर्णय, सामान्य विवेक, उच्च सामाजिक एवं सांस्कृतिक रुचियों जैसे गुण होने चाहिए। सामान्य ज्ञान एवं बुद्धि का परामर्शदाता में होना आवश्यक है।
4. **नेतृत्व-**एक अच्छे परामर्शदाता में नेतृत्व की क्षमता होनी चाहिए ताकि वह दूसरों को प्रभावित कर सके और लोगों का विश्वास हासिल कर सके। उसका व्यवहार विश्वसनीय होना चाहिए। अन्य व्यक्तियों की सहायता व सहयोग देने की भावना होनी चाहिए।

5. **जीवन-**दर्शन-परामर्शदाता में उत्तम आचरण, स्वस्थ जीवन-दर्शन, नागरिकता का भाव, रुचियाँ तथा सौन्दर्य बोध, आध्यात्मिकता एवं धार्मिक परम्पराएँ तथा मानव-प्रकृति में आस्था होनी चाहिए।
6. **स्वास्थ्य एवं बाह्य व्यक्तित्व-**एक अच्छे परामर्शदाता में स्वास्थ्य, मधुर वाणी, व्यक्तित्व की आकर्षक बाह्य रूपरेखा, स्वच्छता, सहानुभूति एवं सहनशक्ति का होना आवश्यक है। उसका हावभाव एवं अंग संचालन भी उचित ढंग का होना चाहिए।
7. **वृत्ति के प्रति समर्पित होना-**वृत्तिक दृष्टिकोण, प्रेरणाभाव, परामर्श कार्य हेतु निष्ठा व उत्साह, वृत्तिक नैतिकता के प्रति गहन भावना, वृत्तिक विकास, कर्त्तव्य हेतु निर्धारित समय के अतिरिक्त भी कार्य करने की इच्छा, परामर्श कार्य में रुचि लेना तथा परामर्शी को सहायता प्रदान करने वाल्ो सम्बन्ध के रूप में कार्य करना।

परामर्श की प्रक्रिया आदिकाल से चली आ रही है। लेकिन किन परामर्श की अवधारणा सामाजिक परिवर्तनों के साथ बदलती रही है। यह एक प्रक्रिया है जिसकी अपनी विशेषताएँ हैं।

2.4 सारांश

परामर्श शब्द दो व्यक्तियों के सम्पर्क की उन सभी स्थितियों का समावेश करता है जिनमें एक व्यक्ति को अपने एवं पर्यावरण के बीच प्रभावी समायोजन प्राप्त करने में सहायता की जाती है। परामर्श में दो तत्व महत्वपूर्ण हैं- मानवीय सम्बन्ध एवं सहायता। परामर्श का कार्य करने वाला परामर्शदाता कहलाता है। परामर्शदाता की भूमिका को देखते हुए केलर ने इन्हें अध्यापक के समकक्ष रखा है और कहा है कि उसे अपने कार्य का महत्व समझते हुए निष्ठावान एवं आदर्श व्यक्ति होना चाहिए। एक अच्छे परामर्शदाता में पारस्परिक सम्बन्धों को विकसित करने की योग्यता होनी चाहिए। स्वस्थ जीवन-दर्शन एवं वृत्ति के प्रति समर्पित होना चाहिए। उसका व्यक्तित्व आकर्षक होना चाहिए एवं उसे हँसमुख व मिलनसार होना चाहिए।

2.5 शब्दावली

आत्म स्वीकृति-अपनी योग्यता को, अपने गुणों एवं सीमाओं को पहचानना व स्वीकार करना।
आत्म ज्ञान-व्यक्ति को, स्वयं के मूल्यांकन में सहायता प्रदान करना। अपने विषय में जानने, अपनी स्वयं की योग्यता व शक्ति को जानना।

वृत्तिक विकास-अपने व्यवसाय के प्रति समर्पण व उसकी आधारभूत योग्यताओं को आत्मसात करना।

जीवन-दर्शन-मूल्यों, विश्वासों, नागरिकता के भाव से ओत-प्रोत होना। एक व्यापक दृष्टिकोण जो नैतिकता पर आधारित हो।

व्यक्तिगत सामंजस्य-वैयक्तिक समायोजन की क्षमता, परिपक्वता, भावात्मक स्थिरता, आत्म सम्मान, अनुभवों का लाभ उठाने की योग्यता आदि गुणों का समावेश।

2.5 शब्दावली

1. परामर्श है-

(क) सहायता सेवा (ख) मार्ग दर्शन

(ग) पारस्परिक सीखना (घ) उपरोक्त सभी

2. समायोजन सम्भव है, यदि-

(क) प्रेरकों में संघर्ष कम हो (ख) उद्देश्यों में अधिकाधिक संगठन हो

(ग) दुःखद स्थिति का सामना करने की क्षमता हो (घ) उपरोक्त सभी

3. परामर्श प्रक्रिया की महत्वपूर्ण प्रविधि है-

(क) बुद्धि परीक्षण (ख) शैक्षिक परीक्षण

(ग) साक्षात्कार प्रविधि (घ) उपरोक्त कोई नहीं

4. परामर्श का उपयोग किया जाता है-

(क) शैक्षिक समस्या में (ख) व्यावसायिक समस्या में

(ग) व्यक्तिगत समस्या में (घ) उपरोक्त सभी

5. परामर्शदाता की मुख्य भूमिका होती है-

(क) समस्या में सहायता (ख) निकट का सम्बन्ध

(ग) परामर्शी विचार विनिमय (घ) उपरोक्त सभी

6. परामर्शदाता का क्षेत्र अधिक व्यापक होता है।

सत्य असत्य

7. शिक्षक एवं परामर्शदाता में अन्तर नहीं है।

सत्य असत्य

8. परामर्शदाता को साक्षात्कार प्रविधि में दक्ष होना चाहिए।

सत्य असत्य

उत्तर-(1) घ, (2) घ, (3) ग, (4) घ, (5) घ, (6) सत्य, (7) असत्य, (8) सत्य।

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

१. परामर्शदाता की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

२. एक अच्छे परामर्शदाता में कौन-कौन सी विशेषताएँ होनी चाहिए।

३. परामर्शदाता के लिए आवश्यक साधन कौन-कौन से हैं?

४. परामर्शदाता की प्रकृति एवं कार्यों का वर्णन करें।

५. परामर्शदाता की अर्हताओं एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर प्रकाश डालिए।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (प्रथम संस्करण-2010), आधुनिक परामर्शन मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी।

२. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (2006), निर्देशन एवं परामर्शन, मोतीलाल-बनारसीदास, वाराणसी।

३. उपाध्याय, राधाबल्लभ एवं जायसवाल, सीताराम (2013-14), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

४. गुप्ता, महावीर प्रसाद एवं गुप्ता, ममता (2007), श्ौक्षिक निर्देशन एवं परामर्श, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।

५. एस0एन0 शर्मा एवं एम0के0 सोलंकी (प्रथम संस्करण-2011), निर्देशन एवं परामर्श, माधव प्रकाशन, ए-23, इन्द्रपुरी कॉलोनी, न्यू आगरा, आगरा।

६. शाह आलम एवं मोहम्मद गुफरान (2011), निर्देशन एवं परामर्श का मूलभूत आधार, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

इकाई-3: परामर्श के सैद्धांतिक दृष्टिकोण, निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम की तर्कसंगता एवं उद्देश्य (Theoretical Approaches of Counseling, Rationalization and Purpose of Guidance & Counseling Programme)

इकाई की संरचना:

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 परामर्श के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण
3.3 निर्देशन एवं परामर्श कार्य की तर्कसंगता एवं उद्देश्य
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर
3.7 निबन्धात्मक प्रश्न
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 प्रस्तावना

''परामर्श एक निर्धारित रूप से संरचित स्वीकृत सम्बन्ध हैं जो परामर्श प्रार्थी को पर्याप्त मात्रा में स्वयं के समझने में सहायता देता है जिससे वह अपने नवीन ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में ठोस कदम उठा सके।'' कार्ल रोजर्स के ये विचार परामर्श के आधारों की ओर संकेत करते हैं जिनका सम्बन्ध सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से है। सिद्धान्त की व्याख्या प्रायः किन्हीं दृष्टिगोचर या घटनाओं के अन्तर्निहित नियमों अथवा दिखाई देने वाले सम्बन्धों के प्रतिवादनों के रूप में की जाती है जिनका एक निश्चित सीमा के अन्दर परीक्षण सम्भव है। यहाँ यह विचार किया जायेगा कि परामर्श के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण कौन-कौन से हैं? इसकी तर्कसंगता एवं उद्देश्य क्या-क्या हैं?

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित बातों के बारे में जान जायेंगे-

- परामर्श के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण
- परामर्श की तर्कसंगता
- परामर्श के उद्देश्य

3.2 परामर्श के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण

परामर्श पारस्परिक रूप से सीखने की प्रक्रिया है तथा इसके अन्तर्गत दो व्यक्ति सम्मिलित होते हैं-एक सहायता प्राप्तकर्त्ता और दूसरा वह व्यक्ति जो इस प्रथम व्यक्ति की सहायता इस प्रकार करता है कि उसका अधिकतम विकास हो सके। परामर्शकर्त्ता के लिए आवश्यक है कि वह परामर्श के सैद्धान्तिक आधारों के बारे में सम्यक् जानकारी हासिल करे। परामर्श के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को सुविधा हेतु इन्हें निम्न वर्गों में रखा जा सकता है-

1. **प्रभाववर्ती/अस्तित्ववादी सिद्धान्त (Affectively Oriented/Existentional Theory)**-इस सिद्धान्त का प्रारम्भ मूलतः अस्तित्ववादी-मानवतावादी दर्शन से होता है। इसमें उपबोध्य को प्रभावपूर्ण ढंग से समझने पर विशेष बल दिया जाता है। इस सिद्धान्त का उद्देश्य व्यक्ति का उपचार करना नहीं होता बल्कि दैनिक जीवन के द्वन्द्वों तथा विरोधाभासों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की दिशा में परामर्शी को सहायता प्रदान करना होता है। समस्याएँ मानव जीवन की अविभाज्य इकाई होती हैं। व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में अनेक समस्याओं से जूझता रहता है। प्रभाववर्ती सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति की सभी समस्याओं का समाधान सम्भव होता है। समस्या समाधान का सम्बन्ध हमारे दृष्टिकोण से होता है। किसी भी समस्या के लिए स्वयं का या परिस्थितियों को दोषी ठहराना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं होता और ना ही उससे कुछ लाभ होता है। प्रभाववर्ती सिद्धान्त के मुख्य अभिग्रह निम्नवत् हैं-

i. यह सिद्धान्त व्यक्ति को उसके जीवन की जटिलताओं के साथ समायोजित करने में विशेष सहायक होता है।
ii. व्यक्ति के जीवन में चिन्ता उसके जीवन की वास्तविकता को अर्जित करने का एक मूल्यवान साधन होता है। अतः चिन्ता का पूर्ण परिहार उचित नहीं होता है।
iii. व्यक्ति कभी भी एकाकी अवस्था में नहीं होता, उसका अपना एक समाज, अपनी एक दुनिया होती है, जो कि उसके अनुभव और अनुभूतियों को प्रभावित करती है।
iv. व्यक्ति के जीवन में दो पक्ष होते हैं-सकारात्मक तथा नकारात्मक। जीवन की तेजस्विता के लिए दोनों ही पक्षों की स्वीकृति होनी चाहिए।
v. इसी प्रकार जीवन के मुख्यतः चार आयाम होते हैं-आध्यात्मिक, आन्तरिक, सामाजिक तथा भौतिक। ये चारों एक दूसरे से समन्वित रहते हैं।
vi. जीवन की जटिलताओं में थोड़ी-सी सहायता से ही व्यक्ति जीवन के आवश्यक अधिगम को सहजता से प्राप्त कर सकता है। परामर्शदाता की सहायता के बिना जीवन की जटिलताएँ व समस्याएँ दिनों-दिन बढ़ती चली जाती हैं।
vii. व्यक्ति में स्वयं को छलने की प्रवृत्ति होती है। आत्मबोध में सत्य का सामना करने तथा प्रमाणिकता के लक्ष्य प्राप्ति की शक्ति होती है।

viii. व्यक्ति का स्व स्थूल व अपरिवर्तनशील नहीं होता। अतः उसमें सदैव रूपान्तरण होता रहता है।

प्रभाववर्ती या अस्तित्ववादी सिद्धान्त का उद्देश्य लोगों में उनकी बुद्धि, शक्तियों, क्षमताओं तथा संसाधनों के बारे में बोध विकसित करना तथा उनके नकारात्मक पक्ष को समझने में उनकी सहायता करना होता है। इस सिद्धान्त का यह विश्वास होता है कि अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भी दृष्टिकोण के परिवर्तन द्वारा किसी भी नियति को बदलना सम्भव होता है।

2. **व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behavioral Theory)**-यह सिद्धान्त उपबोध्य के अवलोकनीय व्यवहारों पर बल देता है। परामर्शी के अनुभवों की अपेक्षा उसके व्यवहारों को जानने व समझने में व्यवहारवादी अधिक रुचि रखते हैं। व्यवहारवादी समस्याग्रस्त व्यक्ति के लक्षणों पर अधिक ध्यान देते हैं। ये समस्याएँ अधिकांशतः उपबोध्य द्वारा अपने व्यवहार करने के ढंग या व्यवहार में असफल होने से सम्बन्धित होती हैं। इस प्रकार व्यवहारवादी परामर्शदाता मुख्यतः क्रिया पर बल देते हैं। व्यवहारवादी सिद्धान्त की मान्यता है कि जब व्यक्ति उत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार करने में असमर्थ होता है वह चिन्तित होने लगता है, तनाव में आ जाता है और सामान्यतया उसका व्यवहार भी अनुपयुक्त होता चला जाता है। उत्तरदायित्व विहीन व्यवहार के कारण व्यक्ति में आत्म-पराजय अर्थात् हीनभावना जाग्रत होने लगती है। व्यक्ति अपने वातावरण के साथ प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप व्यवहारों को जन्म देता है। व्यवहारवादी परामर्शदाता, उपबोध्य को उत्तरदायी रूप से व्यवहार करने के नये तरीके जानने तथा सफल होने के आत्मबोध को जाग्रत करने में सहायता करते हैं ।

   व्यवहारवादी सिद्धान्त की मुख्य मान्यताएँ निम्नवत् हैं-

i. समकालीन वर्तमान व्यवहार पर पूरा ध्यान देना चाहिए क्योंकि कोई भी विगत व्यवहार परिवर्तन नहीं कर सकता।

ii. परामर्श का मूल उद्देश्य परामर्शी का व्यवहार परिवर्तन ही होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की भावनाओं, संवेगों या अभिवृत्तियों की अपेक्षा उसके व्यवहार को अधिक सुगमता से परिवर्तित किया जा सकता है।

iii. परामर्श का लक्ष्य उत्तरदायी व्यवहार होता है। इसमें परामर्शदाता, परामर्शी को ऐसा मार्ग ढूँढ़ने में सहायता करता है जिससे वह दूसरों की आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधक न बने साथ ही अपनी आवश्यकताएँ उत्तरदायी रूप से पूर्ण कर सकें।

iv. सफलता-असफलता का आत्मबोध होना चाहिए।

v. परामर्शदाता को परामर्शी के साथ व्यक्तिगत स्तर पर भी उत्तरदायी ढंग से जुड़ना चाहिए।

vi. परामर्शदाता का एक महत्वपूर्ण कार्य परामर्शी में परिवर्तन हेतु अनेक विकल्प उत्पन्न करने में उसकी सहायता करना भी होता है।

vii. प्रत्येक व्यक्ति को सफल व उत्तरदायित्व वाल्ो लोगों से सम्बद्ध होना चाहिए। यह वृद्धि बल सभी व्यक्ति में पाया जाता है। परामर्श द्वारा इसमें विकास किया जा सकता है।

इस प्रकार व्यवहारवादी सिद्धान्त परामर्श में मुख्य बल वर्तमान पर देते हैं अर्थात् अभी परामर्शी क्या कर रहा है तथा उसके सफल होने के प्रयासों की दिशा क्या है? परामर्शी में अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने की योजना बनाने की क्षमता जाग्रत कर, उसको उत्तरदायी व्यवहार चुनने में समर्थ बनाया जा सकता है।

3. **बोधात्मक/संज्ञानात्मक सिद्धान्त (Cognitive Theory)**- दार्शनिक इपिक्टेटस का विश्वास था कि, ''लोग वस्तुओं से परेशान नहीं होते हैं वरन् उनकी परेशानी का मूल कारण उनका वह अभिमत होता है जो वे उस वस्तु के विषय में रखते हैं।'' बोधात्मक सिद्धान्त में यह स्वीकार किया जाता है कि बोध या संज्ञान व्यक्ति के संवेगों व व्यवहारों के सबसे प्रबल निर्धारक हैं। व्यक्ति जो सोचता है उसी के अनुसार अनुभव व व्यवहार करता है। घटनाएँ या लोग किसी व्यक्ति के जीवन में उसे अनुभव करने या किसी निश्चित रूप में व्यवहार करने हेतु वस्तुतः बाध्य नहीं करते। इस सिद्धान्त के समर्थकों का मानना है कि बाह्य घटनाएँ या कारक, प्रत्यक्ष रूप से सांवेगिक या व्यवहारजन्य प्रतिक्रियाओं की जनक या कारण नहीं होती हैं। इस सिद्धान्त के मूलभूत अभिग्रह निम्नवत् हैं-

i. वातावरण के साथ समुचित समायोजन स्थापित करने के लिए वातावरण के साथ स्वयं के तथा अन्य लोगों के सम्बन्ध में यथार्थपूर्ण सूचनाओं की आवश्यकता होती है।

ii. व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियाँ वातावरण के साथ मध्यस्थता स्थापित करके मौलिक सूचनाएँ प्राप्त करती हैं जिनका प्रभाव व्यक्ति की व्यवहारिकता पर देखा जा सकता है।

iii. व्यक्ति की अनुभूतियाँ, व्यवहार तथा दैहिक अवस्थाओं के साथ विश्वसनीय सम्बन्ध होता है।

iv. व्यक्ति अपने उत्पन्न हुए संज्ञान का औचित्यपूर्ण मूल्यांकन कर सकता है तथा उसमें आवश्यकतानुसार संशोधन भी कर सकता है।

संज्ञानात्मक सिद्धान्त की मुख्य मान्यता यह होती है कि व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक या सांवेगिक समस्याओं का कारण व्यक्ति के विकृत चिन्तन में निहित होता है। व्यक्ति की इन समस्याओं का कारण अनुभव व परिस्थितियों में निहित नहीं होता। जब अस्वस्थ या कुसमायोजित स्कीमा विकसित व सक्रिय हो जाता है तो सूचना संसाधन में भी विकृति आ जाती है। इसके अतिरिक्त स्वतः स्फूर्ति विचार प्रणाली पर नकारात्मक रूप भी देखने में आता है। व्यक्ति का अस्वस्थ संज्ञान पुनर्बालित होता है जिसमें संवेगात्मक समस्याओं की निरन्तरता बनी रहती है। इस उपागम की सामान्य परिकल्पनाओं को हेरिस ने निम्न चार रूपों में दर्शाया है-

(क) मैं ठीक हूँ आप भी ठीक हैं-यह एक स्वस्थ मानसिक दशा है।

(ख) मैं ठीक हूँ आप ठीक नहीं हैं-यह उस व्यक्ति की मनोस्थिति है जो कि दूसरे को अपने दुःख्ोंं का कारण स्वीकार करता है।

(ग) मैं ठीक नहीं हूँ आप ठीक हैं-यह लोगों की सामान्य मनोस्थिति है जबकि वे अन्यों की तुलना में स्वयं को शक्तिहीन अनुभव करते हैं।

(घ) मैं ठीक नहीं हूँ आप भी ठीक नहीं हैं-यह जीवन में निराशावादी दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्तियों की मनोदशा है।

परामर्शदाता संज्ञानात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत परामर्शी को उसकी नष्ट अहं दशा के पुनर्निर्माण हेतु प्रेरित करता है तथा उसे जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने व विकसित करने की क्षमता दृढ़ करने का सम्बल देता है।

4. **व्यवस्थावादी विभिन्न दर्शनग्राही प्रारूप सिद्धान्त (Systematic Eclectic Model Theory)-** परामर्शदाताओं में अपने को विभिन्न दर्शनग्राही घोषित करने की एक नई परम्परा 1977 से प्रारम्भ हुई। ऐसे परामर्शदाताओं का प्रतिशत लगभग 65 था जो कि मुख्यतः नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्रों में कार्यरत थे। सामान्यतः विभिन्न दर्शनग्राही परामर्शदाता यह मानते हैं कि कोई भी सिद्धान्त इतना विकसित नहीं है कि सभी उपबोध्यों के लिए समान रूप से उपयोगी या लाभदायक हो। इसलिए ये परामर्शदाता अभियोग्यताओं, सम्प्रत्ययों, सुझावों, रणीनतियों आदि का ऐसा वृहत् परिप्रेक्ष्य निर्मित करना चाहते हैं जो कि उपबोध्यों की समस्या को तार्किक ढंग से समझने में सहायक सिद्ध हो सके। इस प्रकार के कुछ प्रारूप या मॉडल वर्तमान में प्रचलन में भी आ गये हैं, जिनमें राबर्ट कारविक्स का मानव संसाधन विकास मॉडल (1969), ब्लोनर का विकास मॉडल (1974), इवी तथा डाउनिंग का उद्देश्यपूर्ण परामर्श मॉडल (1980) तथा गजदा (1984) के बहुआयामी प्रशिक्षण एवं जीवन कुशलता मॉडल प्रमुख हैं।

   इस सिद्धान्त की मुख्य विशेषता परामर्श प्रक्रिया का विभिन्न सेवाओं में संयोजित होना है। इन्हीं सोपानों/चरणों के अनुरूप इस सिद्धान्त में परामर्श की विभिन्न अवस्थाएँ स्वीकार की गई हैं। सभी अवस्थाएँ एक दूसरे से जुड़ी व अन्तःक्रियाशील मानी जाती हैं। यही व्यवस्था प्रारूप मूलतः उपागम का आधार है व परामर्श की एक विशिष्ट प्रविधि का जनक है। संक्ष्ोप में, इन अवस्थाओं को इस प्रकार से जाना जा सकता है-

क्र0सं0	परामर्श की अवस्था	परामर्श का क्रियान्वयन
१.	प्रथम अवस्था	समस्या का अन्वेषण करना
२.	द्रितीय अवस्था	द्रिअयामी समस्या परिभाषा
३.	तृतीय अवस्था	विकल्पों का अभिज्ञान करना
४.	चतुर्थ अवस्था	योजना बनाना
५.	पंचम अवस्था	क्रिया-प्रतिबद्धता
६.	षष्ठ अवस्था	मूल्यांकन एवं पृष्ठपोषण

व्यवस्थावादी सिद्धान्त सिद्धान्त की ये व्यवस्थाएँ या चरण एक दूसरे से जुड़े अर्थात् अन्तःक्रियाशील होते हैं। इस सिद्धान्त की मुख्य मान्यता यह होती है कि व्यक्ति जीवन में एकीकरण के उच्चतम स्तर की प्राप्ति हेतु जीवनपर्यन्त प्रयासरत रहता है। इसलिए परामर्शी या उपबोध्य को दी जाने वाली परामर्श सेवा की व्यवस्था व्यावहारिक होनी चाहिए।

3.3 निर्देशन एवं परामर्श कार्य की तर्कसंगता एवं उद्देश्य

व्यक्ति में पायी जाने वाली वैयक्तिक भिन्नता, उसकी एक जैसी क्षमताओं का न होना, उसके परिवेश की विविधता, निर्देशन एवं परामर्श की तर्कसंगता का सहज संकेत प्रस्तुत करते हैं। निर्देशन एवं परामर्श का मानव जीवन में अत्यधिक महत्व है। शिक्षा के उपरान्त निर्देशन ही एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के विकास एवं प्रगति हेतु सर्वाधिक सहायक होती है। निर्देशन का सामान्य उद्देश्य है व्यक्ति द्वारा अपने आपको अच्छी तरह जानना और समझना, अधिकांश लोग अपनी योग्यता और क्षमता के विषय में उचित जानकारी नहीं रखते। इसलिए उन्हें जीवन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। निर्देशन एवं परामर्श के बिना मनुष्य प्रगति नहीं कर सकता। वह न तो अपने जीवन को सुखमय बना सकता है और न ही उत्तम व्यवसाय का चयन अपनी क्षमता के अनुरूप कर सकता है। अमेरिका के शिक्षा विभाग द्वारा निर्देशन का उद्देश्य इस प्रकार बताया गया है, किसी व्यक्ति की प्राकृतिक शक्तियों की खोजन करने के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की विभिन्न विधियों से अवगत कराना जिससे व्यक्ति अपने जीवन को अपने तथा समाज के लिए अधिक उपयोगी बना सके।

वर्तमान सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक असन्तोषों के कारण अनेक असमायोजनकारी तत्व उत्पन्न हो रहे हैं, जिनसे निपटने के लिए अनुभवी एवं भली प्रकार से प्रशिक्षित निर्देशन कार्यकर्त्ताओं एवं समस्याओं से

ग्रस्त व्यक्ति के मध्य सम्बन्ध जोड़ने की आवश्यकता है। यद्यपि सभी मनुष्य कई दृष्टियों से समान हैं, तथापि व्यक्तिगत भिन्नताओं को पहचानना तथा व्यक्ति के निर्देशन या परामर्श के लिए उन पर विशेष ध्यान देना अपेक्षित है। निर्देशन एवं परामर्श का सम्बन्ध यद्यपि जीवन के हर पहलू से होता है, इसके अन्तर्गत सामान्यतः वे क्षेत्र आते हैं जिनमें इस बात में दिलचस्पी रखी जाती है कि व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य उसके विद्यालय, परिवार तथा व्यावसायिक एवं सामाजिक माँगों एवं सम्बन्धों में किस सीमा तक बाधक होता है अथवा इन क्षेत्रों में पायी जाने वाली परिस्थितियों से व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य किस सीमा तक प्रभावित होता है। इसलिए निर्देशन एवं परामर्श का कार्य उन कतिपय व्यक्तियों में ही सीमित नहीं होना चाहिए और इसकी आवश्यकता स्पष्ट रूप में प्रदर्शित करते हैं, बल्कि इसे सभी आयु वर्ग के उन लोगों के लिए उपलब्ध कराना चाहिए जो इससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लाभ उठा सकते हैं।

निर्देशन एवं परामर्श का उद्देश्य है व्यक्ति को सन्तुलित शारीरिक, मानसिक, भावात्मक एवं सामाजिक प्रगति में सहायता देना। उपबोध्य में स्वयं समस्या का समाधान खोजने एवं उसकी व्यवस्था कर सकने की क्षमता का विकास करना है। व्यक्ति के समक्ष उपस्थित समस्याओं के समाधान में सहायक हो जिससे वह तथ्यों को सही ढंग से समझ सके एवं विवेकपूर्ण चुनाव तथा अनुकूलन कर सके।

परामर्श का उद्देश्य उपबोध्य के व्यवहारों, अभिप्रेरणाओं एवं भावनाओं को समझना है। व्यक्ति की इन विशेषताओं को समझने के लिए अनेक तकनीकों एवं परीक्षणों की सहायता ली जाती है। निःसन्देह आवश्यकताओं एवं समस्याओं का निर्धारण वांछनीय है किन्तु व्यक्ति की वास्तविक प्रकृति एवं जीवन लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही उन आवश्यकताओं एवं समस्याओं के समाधान का प्रयास परामर्शदाता को करना चाहिए। परामर्शदाता का उद्देश्य केवल परामर्शी को समझने तक ही सीमित नहीं है। परामर्श का उद्देश्य व्यक्ति की सहायता करना है जिससे वह तात्कालिक समस्या से निजात पा सके तथा भविष्य में भी अपनी समस्याओं का समाधान ढूँढ़ सके। परामर्श के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि परामर्श का लक्ष्य है कि उपबोध्य की सहायता इस तरह की जाय कि वह अपनी क्षमताओं को समझ सके। निर्देशन एवं परामर्श का उद्देश्य व्यक्ति में जीवन-मूल्यों के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता प्रदान करना है। परामर्श का उद्देश्य व्यक्ति को जीवन के श्रेष्ठतम धरातल पर पहुँचने में सहायता प्रदान करना है।

व्यक्ति का सर्वोत्तम एवं पूर्णतः परिष्कृत एवं सन्तुलित विकास करना निर्देशन एवं परामर्श का उद्देश्य है जिससे व्यक्ति आत्मसंयमी, आत्मनिर्देशित और आन्तरिक संसाधनों से पूर्ण हो सके। वैयक्तिक प्रसन्नता और सामाजिक निपुणता तथा व्यक्ति को बेहतर जीवन जीना सिखाना ही निर्देशन एवं परामर्श का उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त परिवारों की सहायता करना, नैतिक चरित्र के विकास में समुदायों की सहायता करना, बेहतर मानवीय सम्बन्धों का प्रोत्साहन एवं पोषण करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझदारी के विकास को सम्मिलित किया जाता है। इस तरह

स्पष्ट है कि निर्देशन एवं परामर्श का उद्देश्य उपबोध्य की सर्वांगीण उन्नति है। देशकाल परिस्थिति के अनुसार इसमें परिवर्तन होता रहता है। हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ भी इसे प्रभावित करते हैं।

3.4 सारांश

परामर्श के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण काफी व्यापक हैं। अध्ययन की सुविधानुसार इन्हें कई वर्गों में रखा जा सकता है- प्रभाववर्ती/अस्तित्ववादी सिद्धान्त, व्यवहारवादी सिद्धान्त, बोधात्मक/संज्ञानात्मक सिद्धान्त, व्यवस्थावादी विभिन्न दर्शनग्राही प्रारूप सिद्धान्त।

प्रभाववर्ती सिद्धान्त का प्रारम्भ मूलतः अस्तित्ववादी-मानवतावादी दर्शन से हुआ है। इसमें उपबोध्य को प्रभावपूर्ण ढंग से समझने पर विशेष जोर दिया जाता है। इस सिद्धान्त का उद्देश्य दैनिक जीवन के द्वन्द्वों एवं विरोधाभासों के साथ समायोजन स्थापित करने के लिए परामर्शी को सहायता प्रदान करना होता है। व्यवहारवादी सिद्धान्त उपबोध्य को निरीक्षणीय व्यवहारों पर जोर देता है। व्यवहारवादी परामर्शदाता मुख्यतः क्रिया पर बल देते हैं। बोधात्मक सिद्धान्त में यह स्वीकार किया जाता है कि बोध्य या संज्ञान व्यक्ति के संवेगों या व्यवहारों के सबसे प्रबल निर्धारक हैं। व्यक्ति जो सोचता है उसी के अनुसार व्यवहार करता है। व्यवस्थावादी विभिन्न दर्शनाग्राही सिद्धान्त की मुख्य विशेषता परामर्श प्रक्रिया का विभिन्न सोपानों में संयोजत होना है। इन्हीं सोपानों के अनुरूप इस सिद्धान्त में परामर्श की विभिन्न अवस्थाएँ स्वीकार की गई हैं।

निर्देशन एवं परामर्श का उद्देश्य है उपबोध्य को अधिक अच्छा करने में सहायता देने अर्थात् उपबोध्य को अपने महत्व को स्वीकारने, वास्तविक 'स्व' एवं आदर्श 'स्व' के बीच में अन्तर को मिटाने में सहायता देने तथा लोगों को अपनी वैयक्तिक समस्याओं में अपेक्षाकृत स्पष्टता से विचार करने में सहायता देने से सम्बन्धित है। उपबोध्य की दृष्टि से निर्देशन एवं परामर्श के उद्देश्य हैं-व्यक्ति की क्षमता का अधिकतम विकास करना, उसके सम्मुख उपस्थित समस्याओं के समाधान में सहायता करना तथा प्रौढ़ समायोजन की शक्ति एवं प्रवृत्ति का विकास करना। उपबोध्य द्वारा अपनी क्षमताओं, अभिप्रेरकों तथा आत्मदृष्टिकोणों की यथार्थ स्वीकृति, सामाजिक-आर्थिक तथा व्यावसायिक परिवेश के साथ तर्कसंगत सामंजस्य की प्राप्ति। वैयक्तिक भिन्नताएँ, विशिष्टीकृत योग्यताओं का जन्मजात न होना, युवाओं की समस्याओं में सहायता की आवश्यकता आदि ऐसे बिन्दु हैं जो निर्देशन की तर्कसंगता एवं उद्देश्य को स्वयं परिभाषित करते हैं।

3.5 शब्दावली

सिद्धान्त- क्रमबद्ध रूप से संयोजित ज्ञान जो किसी वस्तु के परिकल्पनात्मक स्वरूप की ओर संकेत करता है।

परामर्शी/उपबोध्य- सेवार्थी अथवा सहायता प्राप्त करने वाला व्यक्ति जिसे निर्देशन व परामर्श प्रदान किया जा रहा है।

व्यक्ति-केन्द्रित उपागम- यह उपगम स्वीकार करता है कि व्यक्ति में अपना स्वस्थ एवं सृजनात्मक विकास सम्भव बनाने की सामर्थ्य होती है।

व्यवहारवादी सिद्धान्त- इसके प्रक्रियाओं के बाह्य अध्ययन की महत्ता पर मूल रूप से बल दिया जाता है।

3.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर

1. निर्देशन एक प्रकार की-

(क) बाध्यता है। (ख) सहायता है।

(ग) चयन प्रक्रिया है। (घ) अध्ययन पद्धति है।

2. निर्देशन का उद्देश्य है-

(क) व्यक्ति के द्वारा अपनी समस्याओं की पहचान करना। (ख) व्यक्ति द्वारा अपनी समस्याओं को समझना।

(ग) समस्याओं के समाधान करने की प्रक्रिया में व्यक्ति की सहायता करना। (घ) उपर्युक्त सभी।

3. निर्देशन का सिद्धान्त आधारित है-

(क) व्यक्ति के महत्व एवं प्रतिष्ठा की स्वीकृति। (ख) स्वयं निर्देशन की योग्यता।

(ग) जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया। (घ) उपरोक्त सभी।

4. निम्न उद्देश्यों में से कौन-सा उद्देश्य परामर्श का अभीष्ट उद्देश्य नहीं है?

(क) मानवीय स्वास्थ्य का विकास। (ख) आत्मसिद्धि।

(ग) व्यक्ति के संसाधन का संवर्द्धन। (घ) व्यवहार परिमार्जन।

5. मानतावादी-अस्तित्ववादी दर्शन की उपज है-

(क) प्रभाववर्ती सिद्धान्त। (ख) व्यवहारवादी सिद्धान्त।

(ग) बोधात्मक सिद्धान्त। (घ) व्यवस्थावादी सिद्धान्त

6. आपातकालीन हस्तक्षेप एवं प्रबन्धन परामर्श का उद्देश्य नहीं है।

(क) हाँ (ख) नहीं

7. परामर्श का उद्देश्य विकासात्मक होता है।

(क) हाँ (ख) नहीं

8. जीवन में सार्थकता का विकास परामर्श का प्रमुख तात्कालिक उद्देश्य होता है।

(क) हाँ (ख) नहीं

उत्तर-(1) ख, (2)घ, (3) घ, (4) घ, (5) क, (6) नहीं, (7) हाँ, (8) नहीं।

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निर्देशन एवं परामर्श की तर्कसंगता का वर्णन कीजिए।
2. निर्देशन एवं परामर्श के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
3. परामर्श के सैद्धान्तिक आधार कौन-कौन से हैं?
4. प्रभाववर्ती सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
5. परामर्श के क्षेत्रों में प्रचलित किन्हीं दो सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (प्रथम संस्करण-2010), आधुनिक परामर्शन मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी।
2. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (2006), निर्देशन एवं परामर्शन, मोतीलाल-बनारसीदास, वाराणसी।
3. उपाध्याय, राधाबल्लभ एवं जायसवाल, सीताराम (2013-14), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. गुप्ता, महावीर प्रसाद एवं गुप्ता, ममता (2007), शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।
5. एस0 एन0 शर्मा एवं एम0 के0 सोलंकी (प्रथम संस्करण-2011), निर्देशन एवं परामर्श, माधव प्रकाशन, ए-23, इन्द्रपुरी कॉलोनी, न्यू आगरा, आगरा।
6. शाह आलम एवं मोहम्मद गुफरान (2011), निर्देशन एवं परामर्श का मूलभूत आधार, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

इकाई-4: निर्देशन एंव परामर्श कार्यक्रम का आयोजन व मूल्यांकन और परामर्श में नैतिकता (Organizing and Evaluation of Guidance & Counseling Programme and Ethics in Counseling)

इकाई की संरचना:

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम का संगठन

4.3 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन

4.4 परामर्श में नैतिकता या नीति संहिता

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 प्रस्तावना

एवं परामर्श का मानव जीवन में अपना अलग ही महत्व है। निर्देशन/परामर्श प्रबन्धन कोई ऐसा कार्यक्रम नहीं है जिसे विद्यालय या महाविद्यालय के किसी कक्ष या संकाय/सम्भाग तक सीमित कर दिया जाय। निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम एक निश्चित नीति के अनुरूप संगठित तथा प्रशासित होता है। इससे व्यक्ति या विद्यार्थी के लक्ष्य प्राप्ति से निर्देशनकर्ता/परामर्शदाता का अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध होता है। निर्देशन कार्यक्रम का संगठन एवं प्रशासन कुछ मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। जिसका विस्तृत वर्णन इस इकाई में किया जायेगा। अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखकर निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के स्वरूप को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है। निर्देशन/परामर्श का मूल्यांकन भी आवश्यक होता है जिसका सम्पादन कई चरणों में क्रमवार किया जाता है। निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के मूल्यांकन में प्रमुख रूप से प्रयोगात्मक विधि, सर्वेक्षण विधि एवं व्यक्ति अध्ययन विधि का उपयोग किया जाता है।

परामर्श कार्यक्रम के कुछ नीति संहिताएँ हैं, जिनका अनुपालन करना आवश्यक होता है। इस सम्बन्ध में द अमेरिकन साइकोलॉजिकल एसोसिएशन ने वर्तमान सन्दर्भ में एक नीति संहिता का विकास किया है जिसमें समय-समय पर संशोधन एवं परिवर्द्धन होता रहता है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि-

- निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम का संगठन क्या है?
- निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन का चरण क्या है तथा इनके मूल्यांकन के लिए कौन-सी प्रमुख विधियाँ हैं?
- परामर्श में नैतिकता या नीति संहिता क्या है?

4.2 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम का संगठन

मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों के स्वरूप को दो श्रेणियों में विभाजित किया है-

१. प्रथम प्रारूप में प्रशासक/निरीक्षक/अधीक्षक (Superintendent)/नीति निर्धारण का पूरा कार्य करता है, जिसे हम यहाँ ‘प्रारूप प्रथम’ कहकर संज्ञापित करते हैं।
२. द्वितीय प्रारूप में निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम के निर्धारण का उत्तरदायित्व एक समिति, जिसे ‘निर्देशन समिति (Guidance Committee)’ के रूप में संज्ञापित करते हैं।

प्रारूप प्रथम-निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम के प्रथम संगठनात्मक प्रारूप में निम्न बिन्दु उल्लेखनीय हैं-

१. संस्थान का प्रशासनिक अधिकारी अधीक्षक या निरीक्षक निर्देशन हेतु नीति निर्धारण का उत्तरदायित्व प्रधानाचार्य को प्रदान करता है।
२. निर्देशक/परामर्शदाता का सम्बन्ध एक ओर प्रशासनिक श्रेणी से होता है तथा दूसरी ओर शिक्षक और निर्देशन/परामर्श नीति के साथ (सहयोगात्मक श्रेणी के साथ) भी रहता है।
३. निर्देशन/परामर्श नीति निर्धारण का उत्तरदायित्व परामर्शदाता का होता है जो सहयोगात्मक रूप से शिक्षक व समिति दोनों से सम्बन्ध भी रखता है।
४. निर्देशन/परामर्श समिति वैकल्पिक रूप से ही सहयोगी होती है। निर्देशन/परामर्श का मुख्य कार्य परामर्शदाता/निर्देशनकर्त्ता का होता है।

प्रथम-संगठनात्मक प्रारूप को निम्न प्रकार से चित्रतित किया जाता है-

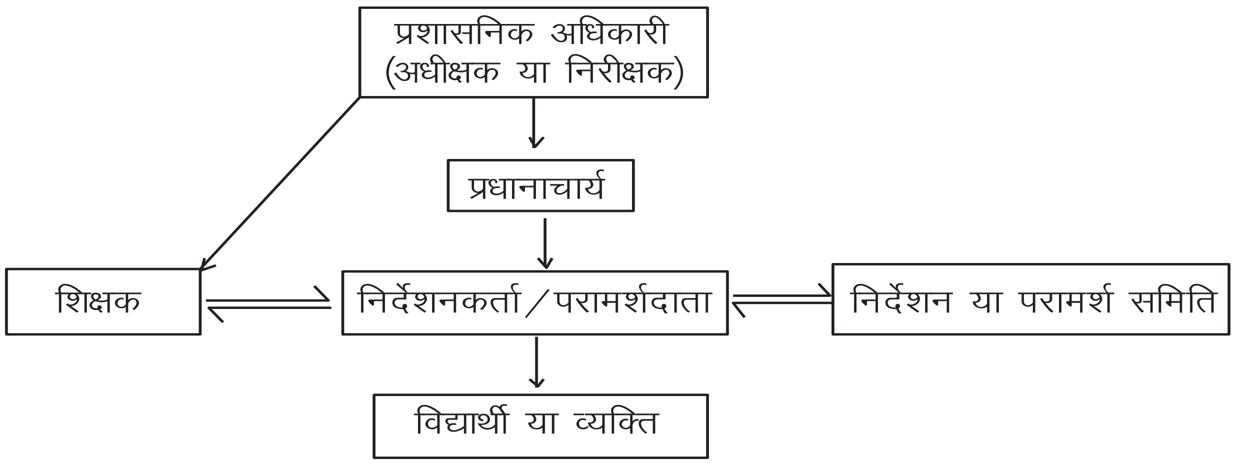

इस संगठनात्मक स्वरूप को प्राथमिक विद्यालय एवं माध्यमिक विद्यालय के सन्दर्भ में अग्र प्रकार चित्रतित करते हैं-

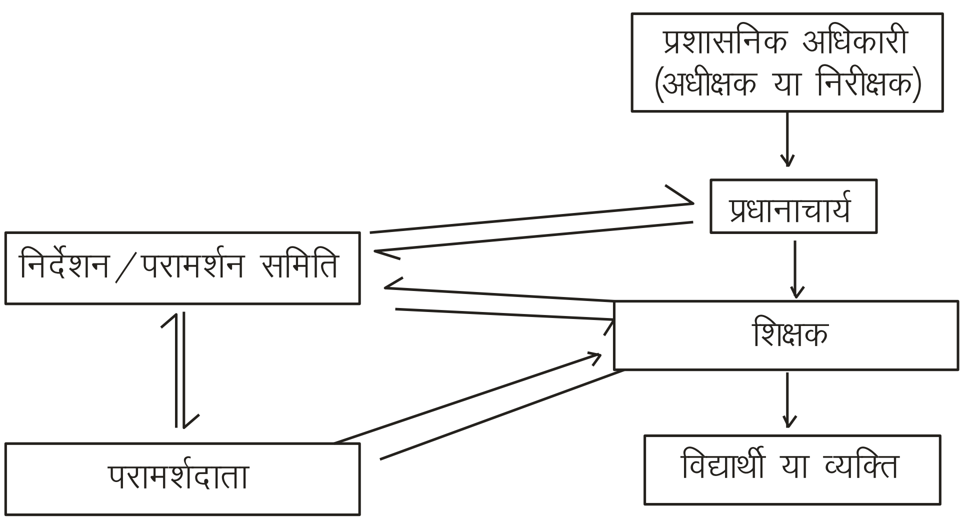

जब प्रथम संगठनात्मक प्रारूप को महाविद्यालय के सन्दर्भ में क्रियान्वित किया जाता है तो उसका चित्रण निम्नवत् होगा-

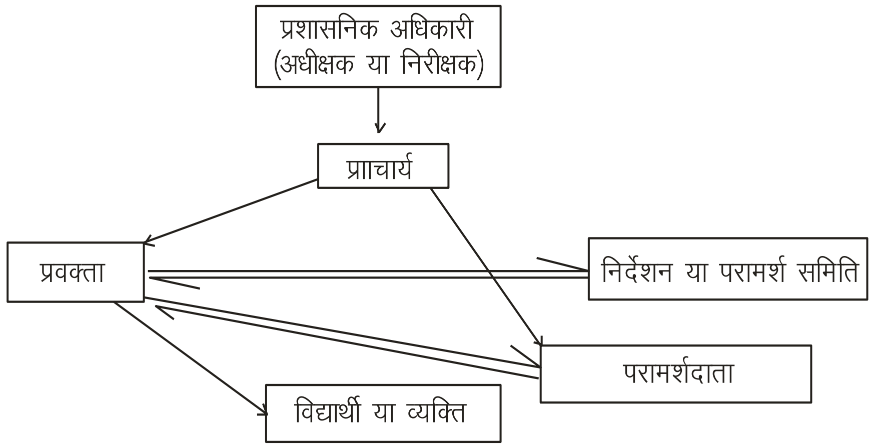

प्रारूप द्वितीय-निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के संगठनात्मक प्रारूप द्वितीय में निम्न बिन्दु उल्लेखनीय हैं-

१. प्रथम तो प्रशासनिक अधिकारी निर्देशन कार्यक्रम का उत्तरदायित्व संस्थान प्रमुख अर्थात् प्राचार्य को ही सौंपता है।
२. प्राचार्य नीति निर्धारण का उत्तरदायित्व एक निर्देशन/परामर्श समिति को सौंपता है तथा यथासम्भव सहयोग भी प्रदान करता है।
३. निर्देशन/परामर्श समिति का सहयोगात्मक सम्बन्ध एक ओर शिक्षक से होता है और दूसरी ओर परामर्शदाता से भी सहयोगात्मक सम्बन्ध रहता है।
४. इस समिति का प्रशासनिक सम्बन्ध प्राचार्य व विद्यार्थी से होता है।
५. निर्देशन/परामर्श क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व शिक्षक व परामर्शदाता दोनों पर रहता है।
६. परामर्शदाता निर्देशन समिति के सदस्यों की अभिवृत्तियों व अभिक्षमताओं के प्रति पूर्ण सक्रिय व संवेदनशील रहता है।

द्वितीय संगठनात्मक प्रारूप को निम्नवत् चित्रित किया जाता है-

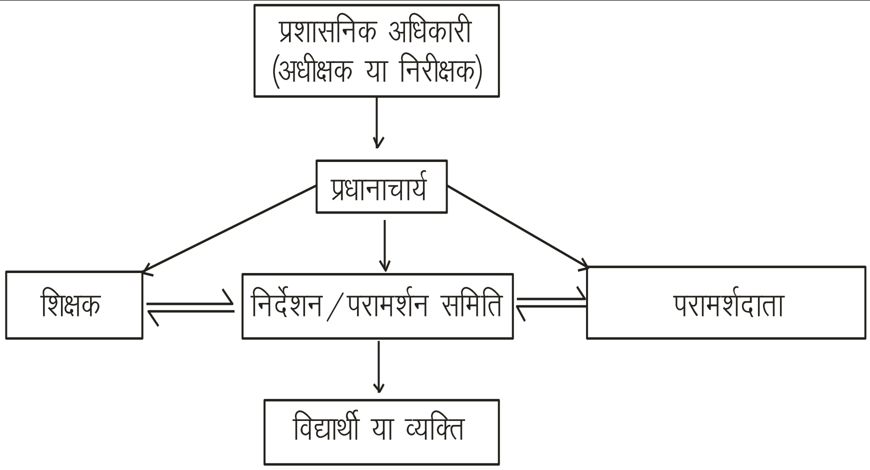

द्वितीय संगठनात्मक प्रारूप को प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के सन्दर्भ में निम्न चित्रण के अनुसार प्रशासित किया जाता है-

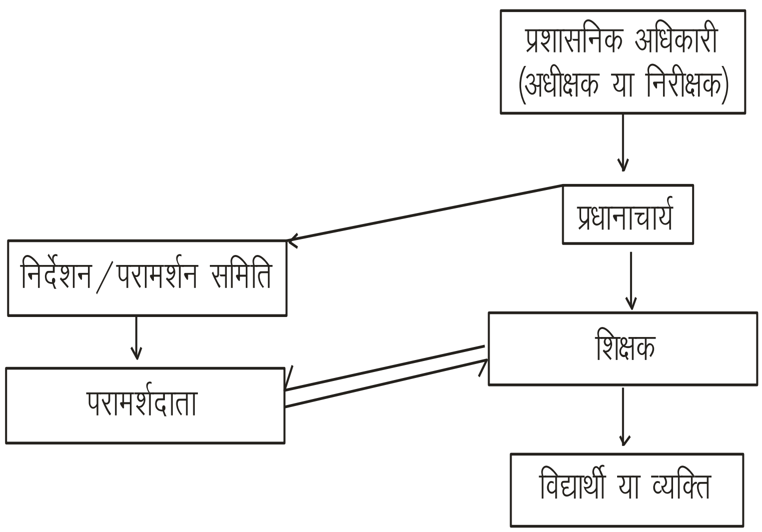

जब द्वितीय संगठनात्मक प्रारूप को महाविद्यालय के सन्दर्भ में निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम नीति में क्रियान्वित किया जाता है तो उसका चित्रण निम्नवत् होता है-

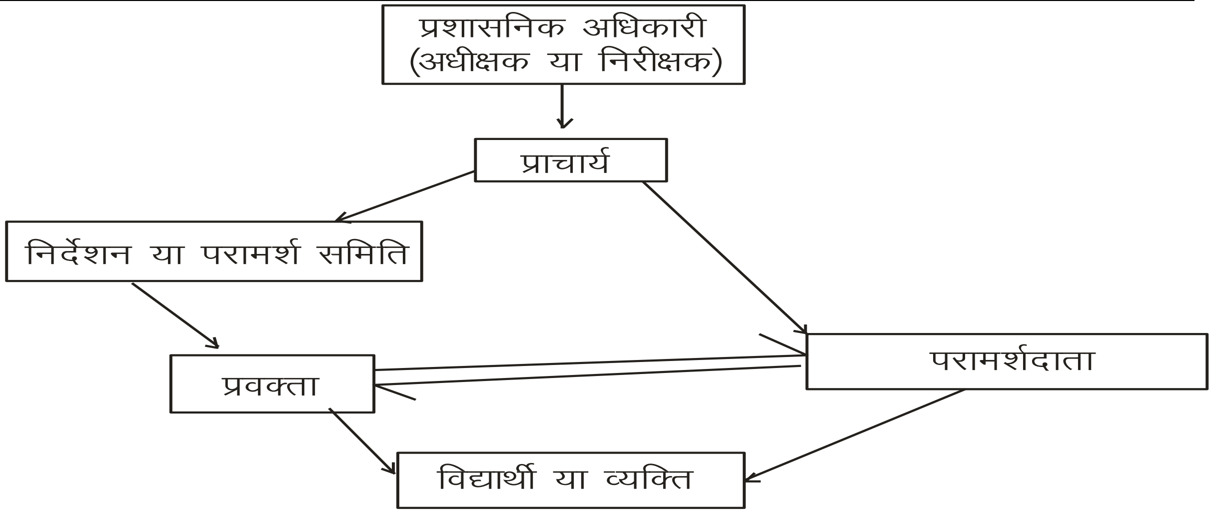

चित्रणांकन संकेत-

——→ का तात्पर्य ''प्रशासनिक सम्बन्ध''

⇌ का तात्पर्य 'सहयोगात्मक सम्बन्ध''

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम में सक्रिय निर्देशन/परामर्श समिति के सन्दर्भ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि निर्देशन/परामर्श समिति में निर्देशन/परामर्श सेवाओं में रुचि व पर्याप्त ज्ञान रखने वाले विशेषज्ञों से ही बनाई जाती है। कभी-कभी संगठनात्मक प्रारूप द्वितीय में निर्देशन/परामर्श समिति के अतिरिक्त एक निर्देशन/परामर्श परिषद का भी गठन किया जाता है। इस निर्देशन/परामर्श परिषद का मुख्य कार्य शिक्षण संस्थान प्रधान (प्रधानाचार्य/प्राचार्य) और निर्देशन/परामर्श समिति दोनों के साथ सहयोगात्मक सम्बन्ध में स्थापना करता है।

सामान्यतः प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में पूर्णकालिक परामर्शदाता की सेवाएँ (स्थायी नियुक्ति न होने के कारण) उपलब्ध नहीं हो पाती है। अतः विद्यार्थियों को परामर्श सेवा हेतु कुछ कुशल, योग्य, सक्षम तथा इच्छुक व्यक्तियों की समिति 'निर्देशन समिति' का गठन किया जाता है, जो समय-समय पर विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार उनकी समस्याओं के समाधान हेतु सहयोग प्रदान करती है।

निर्देशन/परामर्श सेवा संगठन के आधारभूत तथ्य, सिद्धान्त व कार्य-

शिक्षण संस्थानों की सार्थकता होती है जब वह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में प्रयासरत होता है। विद्यालयों या महाविद्यालयों का एकमात्र उद्देश्य मात्र ज्ञान प्रदान करना न होकर निर्देशन/परामर्श जैसी सेवाएँ विद्यार्थियों को

उपलब्ध कराना, शिक्षण संस्थानों के मूल उद्देश्यों के अन्तर्गत ही आता है। इसके लिए कुछ ऐसे संगठन का गठन होता है जो निर्देशन/परामर्श जैसे विकास में आवश्यक सेवाएँ देने में समर्थ होता है।

विद्यालय-निर्देशन/परामर्श सेवा संगठन-विद्यालय में विद्यार्थी कुछ कठिनाइयों व समस्याओं का अनुभव करता है जिसका वह समाधान करना चाहता है और उसके लिए वह सहयोग की भी आशा करता है। विद्यार्थियों की ये समस्याएँ उसकी शैक्षिक प्रगति को भी प्रभावित करती हैं। इन कठिनाइयों एवं समस्याओं के निराकरण के लिए विद्यालयों में निर्देशन/परामर्श सेवा संगठन होता है।

संगठन के आधारभूत तथ्य/मुख्य सिद्धान्त-शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य या लक्ष्य व्यक्ति का विद्यार्थी का सर्वांगीण एवं सर्वोत्तम ढंग से विकास करना होता है। अपनी पुस्तक 'गाइडेंस सर्विस' में प्रसिद्ध निर्देशन मनोविज्ञानी हम्फ्री एवं ट्रेक्सलर विद्यालय की निर्देशन/परामर्श सेवा के संगठन के सन्दर्भ में कुछ आधारभूत तथ्य/मुख्य सिद्धान्तों को निम्न रूप में उल्लेख करते हैं।

1. **विद्यालय निर्देशन/परामर्श सेवा संगठन-**निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के उद्देश्यों का निर्धारण विद्यालयों के स्तर, उनकी आवश्यकताओं तथा शिक्षण संस्थान की मान-मर्यादा व आदर्श को ध्यान में रखकर किया जाता है।

2. **संगठन का स्वरूप-**निर्देशन/परामर्श सेवा में संगठन का स्वरूप संस्थान के उद्देश्यों, आर्थिक संसाधनों, गुण, विशेषताओं, कर्मचारियों की संख्या आदि के साथ-साथ संस्थान के स्तर को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाता है।

3. **संगठन में सरलता-**विद्यालय निर्देशन/परामर्श सेवा का संगठन एवं कार्यक्रम सरल रूप में रखा जाता है। संगठन की जटिलता लक्ष्य प्राप्ति को प्रभावित करती है। यद्यपि यह तो सम्भव है कि किसी कार्यक्रम का जटिल स्वरूप आकर्षित लगे लेकिन उसको क्रियान्वित करना भी एक चुनौती बन जाता है।

4. **कार्य निर्धारण-**निर्देशन/परामर्श सेवा द्वारा जो भी कार्य का लक्ष्य पूर्ण किये जाने होते हैं उनको पहले से ही निर्धारित कर लेते हैं जिससे उनकी पूर्ति हेतु आवश्यक योजना पहले से बनाई जाती है।

5. **सहकर्मियों को निश्चित कार्य सौंपना-**निर्देशन/परामर्श सेवा में लगे सहकर्मियों के निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की भी भूमिका निभानी होती है। उसके बारे में पूरी जानकारी पहले से ही होनी चाहिए। प्रत्येक सहकर्मी की दक्षता व योग्यता को ध्यान में रखते हुए उन्हें कार्य का वितरण कर देना चाहिए।

6. **अधिकार क्षेत्र का निर्धारण-**निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के सहकर्मी को सौंपे गये कार्य योजना के साथ-साथ उनके अधिकार क्षेत्रके बारे में भी उनको जानकारी पहले से ही स्पष्ट रूप से होनी चाहिए, जिससे वे अपनी भूमिका को पूरे कार्यक्रम में भली-भाँति निभा सके। निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की सेवा में

सहयोगी निर्देशन/परामर्श सहकर्मियों में दो प्रकार की श्रेणी के सहकर्मी हो सकते हैं, एक पूर्णकालिक तथा दूसरे अंशकालिक सहकर्मी।

निर्देशन/परामर्श सेवा संगठन के मुख्य कार्य:

संगठन के आधारभूत सिद्धान्तों के आधार पर कहा जाता है कि निर्देशन/परामर्श सेवा के अन्तर्गत आने वाले कार्यों का निश्चय निर्देशन/परामर्श सेवा को संगठित करते समय कर लेना चाहिए। यद्यपि निर्देशन/परामर्श का कार्यक्षेत्रबहुत व्यापक है, लेकिन शिक्षण संस्थानों से सम्बद्ध जीवन में इसके कुछ विशेष कार्य क्षेत्रओं का निम्न प्रकार उल्लेख किया जाता है-

1. निर्देशन/परामर्श सेवा का विशेष कार्य शिक्षण संस्थानों में प्रवेश तथा विद्यालय की जीवनधारा की ओर विद्यार्थियों के साथ-साथ जनसामान्य को भी उन्मुख करना।
2. संस्थान में प्रवेश सम्बन्धी नियम प्रवेश शुल्क परीक्षा आदि को निर्धारित करना भी संगठनों का कार्य होता है।
3. संस्थान के लिए हानिकारक नियम, परम्परा में संशोधन करना।
4. विद्यार्थियों एवं विद्यालयों के अन्य सदस्यों के सन्दर्भ में विस्तृत अभिलेख तैयार करके रखना।
5. विद्यार्थियों का प्रगति विवरण एवं मूल्यांकन सम्बन्धी सूचनाएँ तथा अन्य विवरणों को अभिलेख रूप में सुरक्षित रखना।
6. विद्यार्थियों का स्वास्थ्य सम्बन्धी परीक्षण कराना तथा आवश्यक सुझावों व सावधानियों के बारे में जानकारी उपलब्ध करना, निर्देशन/परामर्श सेवा का ही अंग है। इसका भी शिविर आदि के माध्यम से निर्वहन करना चाहिए।
7. विद्यार्थियों में सामाजिक व पारिवारिक सामंजस्य को विकसित करके उनकी असमायोजन या कुसमायोजन जैसी समस्याओं का निराकरण करना।
8. निर्देशन/परामर्श सहकर्मियों को विद्यार्थियों के संवेगात्मक पक्ष को भी निर्देशन/परामर्श देते समय पूरी तरह ध्यान में रखना चाहिए।
9. प्रशासन स्तरीय कठिनाइयों, छात्रावास सम्बन्धी व्यवस्थाओं को भी निर्देशन/परामर्श सेवा में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

10. पाठ्येत्तर क्रियाकलापों में विद्यार्थियों को प्रेरित करना तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं व अभिरुचियों के अनुकूल खेलकूद, भाषण सम्मेलन तथा प्रतियोगिताओं का आयोजन करना भी व्यक्तित्व का विकास का एक आवश्यक पहलू मानकर निर्देशन/परामर्श सेवा में जोड़ना चाहिए।
11. शिक्षण सम्बन्धी होने वाली कमियाँ, दोष तथा उनके कारणों का पता लगाकर उनका निराकरण व विश्लेषण करना।
12. आवश्यकतानुसार विद्यार्थियों के लिए निदानात्मक शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था भी करना, निर्देशन सेवा की सार्थकता के लिए आवश्यक हो जाता है।
13. आर्थिक रूप से वंचन झेल रहे विद्यार्थियों के लिए आर्थिक स्रोतों की सूचनाएँ देना तथा उन विद्यार्थियों को अंशकालिक नियोजन तथा सहायता प्रदान करना।

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में मुख्य रूप से तीन संगठनों का उपयोग किया जा सकता है। इन तीनों संगठनों में से प्रशासनिक अधिकारी विद्यार्थियों व संस्थान की आवश्यकता या निर्देशन/परामर्श लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए किसी एक संगठन प्रारूपता चयन करके निर्देशन कार्यक्रम का कार्यान्वयन कर सकते हैं। इन संगठनों के तीन प्रकार निम्नवत् हो सकते हैं-

- रेखा संगठन(**Line Organization**)-इस संगठन में अधिकार क्रम का स्तरीकरण रहता है जो प्रशासनिक अधिकारी (निरीक्षक या अधीक्षक) से विद्यार्थी (नीचे) की ओर चलता है। अतः इस प्रकार के संगठन में अधिकार की दृष्टि से प्रशासनिक अधिकारी सबसे ऊपर होता है।
- कर्मचारी संगठन(**Staff Organization**) -इसमें प्रशासनिक अधिकारी सम्बद्ध अधिकारों का कर्मचारियों तथा शीर्ष अधिकारियों को उनके उत्तरदायित्व के रूप में उनको सौंपता है। इस संगठन प्रारूप का एक बड़ा लक्ष्य होता है कि प्रत्येक वर्ग के कर्मचारी अपने-अपने कार्यों में विशेष रूप से कुशलता प्राप्त कर लेते हैं।
- सेवा-कर्मचारी मिश्रित(**Line & Staff Organization**)-संगठन का यह प्रारूप रेखा संगठन तथा कर्मचारी संगठन का मिश्रित रूप होता है। अतः इसमें दोनों ही संगठनों की विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं।

4.3 निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के अन्तर्गत अनेक सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। किसी निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन निम्न समस्याओं का समाधान या प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए किया जाता है-

1. किसी निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम का स्वरूप कैसा हो, जिससे कि निर्देशन/परामर्श लक्ष्य सिद्धि अधिकतम हो सके?
2. किसी संस्थान में संचालित निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम का वर्तमान स्वरूप क्या पर्याप्त उपयुक्त या उद्देश्य प्राप्ति के अनुकूल है?
3. निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम में क्या संशोधन और परिमार्जन की आवश्यकता है, इत्यादि।

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के अन्तर्गत दी जाने वाली सेवाओं को लाभार्थियों तक पहुँचाने के लिए अनेक लक्ष्य व उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं। इन निर्देशन सेवाओं को प्रदान करते समय अनेक प्रविधियों का भी उपयोग किया जाता है। उपर्युक्त प्रश्नों का निराकरण अनेक विविधताओं के सन्दर्भ में करना कुछ कठिन होता है।

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन में स्वीकार्य दो प्रारूप

किसी संस्थान में सक्रिय निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रदत्त सेवाओं की गुणवत्ता का मूल्यांकन, इसे तुलनात्मक मूल्यांकन भी कहा जा सकता है। इसमें विभिन्न कार्यक्रमों की तुलना करते हुए यह जानने का प्रयास करते हैं कि कौन-सा कार्यक्रम अधिक उपयुक्त है।	मूल्यांकन का दूसरा प्रकार विशिष्ट मूल्यांकन होता है। इसके अन्तर्गत कार्यक्रम विशेष के परामर्शियों पर पड़ने वाले प्रभाव तथा उन्हें प्राप्त होने वाले लाभों के साथ-साथ जीवन लक्ष्यों की सिद्धि मार्ग में प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है।

निर्देशन/परामर्श मूल्यांकन के प्रमुख सोपान:

निर्देशन/परामर्श मूल्यांकन का उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि जिन लोगों के लिए निर्देशन/परामर्श सेवा कार्यक्रम का आयोजन या क्रियान्वयन किया जा रहा है उनके लिए इन निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम (सेवा) का कितना महत्व है? कितनी उपयोगी सिद्ध हो रही है या कितना मूल्य या कितनी सार्थकता है? अतः किसी विद्यालय/कॉलेज में क्रियान्वित निर्देशन/परामर्श सेवा कार्यक्रम के मूल्यांकन का उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि विद्यार्थियों के लिए इसका क्या महत्व है? तथा उस कार्यक्रम में उनको कितना लाभ प्राप्त हो रहा है? इस निर्देशन/परामर्श मूल्यांकन की प्रक्रिया में मुख्य रूप से निम्न चरणों का अनुसरण किया जाता है-

1. **सर्वप्रथम कार्यक्रम के उद्देश्यों का वर्णन करना:** इसमें निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाता है। निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के सहकर्मियों को भी निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के उद्देश्यों को समझना तथा स्वीकार करना चाहिए। निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के निर्धारित किये गये लक्ष्य तभी प्राप्त हो सकते हैं।

2. **निर्देशन/परामर्श सहकर्मियों का मूल्यांकन करना:** निर्देशन/परामर्श सहकर्मियों की स्थिति का मूल्यांकन किया जाना भी आवश्यक होता है। यथा-निर्देशन/परामर्श सहकर्मियों की योग्यता, क्षमता, प्रशिक्षण, अनुभव, उनकी संख्या, अभिरुचियाँ, समर्पण व्यक्तित्व एवं अन्य विशेषताएँ भी निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के क्रियान्वयन पर प्रभाव डालती हैं। अतः इन विशेषताओं या लक्ष्यों का भी मूल्यांकन करना चाहिए।

3. **संसाधनों का अवलोकन/आँकलन:** निर्देशन/परामर्श की लक्ष्य प्राप्ति में उपलब्ध संसाधनों/सुविधाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः भौतिक संसाधन या सुविधाएँ परीक्षण (टेस्ट व उपकरण आदि) कम्प्यूटर जैसे अभिलेख तैयार करने वाले उपकरण आदि की उपलब्धता का मूल्यांकन किया जाता है।

4. **संकलित प्रदत्त का विशलेषण** विद्यार्थी या परामर्शी के सन्दर्भ में शिक्षकों, पालकों (माता-पिता), परिजनों, पड़ोसियों (सेवायोजकों व मित्रादि) से प्राप्त होने वाली सूचनाओं या अभिलेखों से प्राप्त प्रदत्तों का विशलेषण किया जाता है।

5. **अभिलेखों की सार्थकता का अवलोकन:** प्रत्येक निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम सम्बन्धित विद्यार्थियों, व्यक्तियों व निर्देशनार्थियों/परामर्शियों के सन्दर्भ में अभिलेख तैयार करता है। अतः कार्यक्रम मूल्यांकन में अभिलेखों की सार्थकता की भी जाँच की जानी चाहिए क्योंकि कभी-कभी ऐसा भी होते देखा गया है कि उपयोगी लगने वाले अभिलेख निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के क्रियान्वयन में पूर्णतः सार्थक या उपयोगी न हों।

6. **सहयोगात्मक सम्बन्धों का विशलेषण** निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की लक्ष्य प्राप्ति के लिए माता-पिता, अनुभवी व्यक्तियों, सेवायोजकों के पारस्परिक सहयोगात्मक सम्बन्धों की विशेष आवश्यकता पड़ती है। अतः निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन करते समय यह भी विचार किया जाता है कि निर्देशनकारियों को विभिन्न स्रोतों द्वारा सहयोगात्मक सम्बन्धों के सन्दर्भ में कैसी व्यवस्था की गई है।

7. **निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की लक्ष्य प्राप्ति का मूल्यांकन**-जिनके लिए निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम आयोजित किया गया है उनके दृष्टिकोण से लक्ष्य प्राप्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक वह है जिसका आँकलन किया जाता है। यथा-शिक्षण संस्थान में अनुशासनहीनता में कमी, अनुपस्थिति में गिरावट, शैक्षिक व प्रशिक्षणात्मक कार्यक्रमों की रुचि में वृद्धि, परिवार-समाज व संगठन में समायोजनात्मक सुधार आदि का मूल्यांकन करना, निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की सार्थकता मूल्यांकन के मुख्य बिन्दु होते हैं।

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन की विभाएँ:

निर्देशन/परामर्श सेवा कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए अनेक विधियों का उपयोग किया जाता है जिनके आधार पर ही निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम का अन्य संस्थाओं में विस्तारण किया जाता है। इसी के आधार पर उसके वर्तमान स्वरूप को बनाये रखने अथवा उसमें कुछ सुधार या बदलाव लाने के लिए विचार किये जाते हैं, निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन की विधाओं को निम्न चित्रण से प्रकट किया जा रहा है-

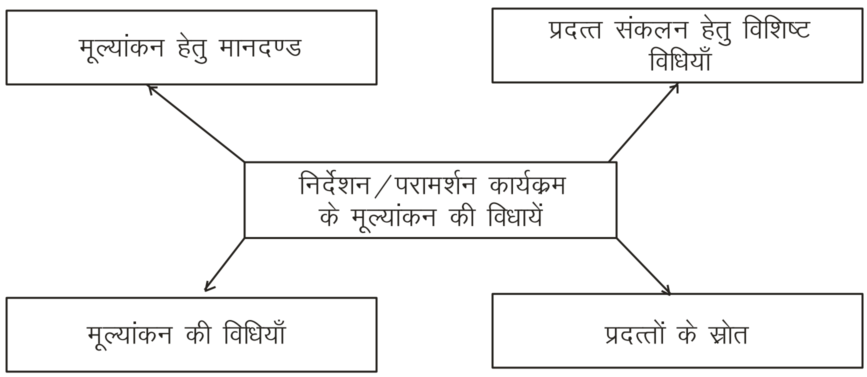

1. **मूल्यांकन हेतु मानदण्ड:** निर्देशन/परामर्श मनोवैज्ञानिकों ने मूल्यांकन कार्य हेतु कुछ मानदण्डों का उपयोग किया है। यदि कोई निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम सेवा तथा सामग्री व उपकरण आदि लम्बे समय से अस्तित्व में है तो निर्देशन कार्यक्रम की सफलता या सार्थकता का प्रतीक माना जाता है। अर्थात् यदि निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम उपयुक्त (आवश्यकतानुसार) तथा लाभकारी नहीं होगा तो उसका अस्तित्व शेष नहीं रह जायेगा। यद्यपि कुछ विद्वान इससे सहमत नहीं है क्योंकि किसी कार्यक्रम का अस्तित्व उसके महत्वपूर्ण सकारात्मक योगदान के बिना भी बना रह सकता है। विद्यार्थियों की योग्यताओं में वृद्धि को भी मानदण्ड रूप में स्वीकार किया जाता है।

   निर्देशन/परामर्श आन्दोलन के प्रारम्भिक समय में अनेक मानदण्डों को मनोवैज्ञानिकों ने निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों एवं निर्देशन/परामर्श सेवाओं के मूल्यांकन हेतु प्रयुक्त किया है। क्रो एवं क्रो (1960) संचालित निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के आत्म मूल्यांकन हेतु मुख्य रूप से निम्न बिन्दुओं पर विशेष बल देते हैं। यही बिन्दु निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के परिणामों या उनकी सार्थकता पर विशेष बल देते हैं-

   - विद्यार्थियों की निर्देशन/परामर्श सेवाओं के प्रति अभिवृद्धि।
   - उनकी आगामी शिक्षा व्यवस्था या व्यवसाय में सफलता।
   - उनकी असफलता तथा विद्यालय/महाविद्यालय छोड़ने के कारण।
   - विद्यार्थी-मूल्यांकन कार्यक्रम की उपयुक्तता।
   - विद्यार्थी की शैक्षिक आवश्यकताओं के साथ पाठ्यक्रम का सम्बन्ध।
   - परामर्श की व्यवस्था की पर्याप्तता व उपयुक्तता।

- निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के साथ सामुदायिक सहयोग का स्वरूप एवं मात्र।
- शिक्षण संस्थान में उपलब्ध निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के प्रति माता-पिता (संरक्षकों) की अभिवृत्तियाँ व सहयोग।

2. **मूल्यांकन** की **विधियाँ**: मूल्यांकन के लिए मुख्यतः निम्न तीन विधियों का उपयोग किया जाता है-
    a. प्रयोगात्मक विधि
    b. सर्वेक्षण विधि
    c. व्यक्ति अध्ययन विधि
    a. **प्रयोगात्मक विधि**-इस विधि से निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम का मूल्यांकन करने के लिए निर्देशन/परामर्श सेवा के लिए आरम्भ से ही योजना बनाई जाती है। इसमें व्यक्तियों के एक या अधिक समूहों पर एक या अनेक चरों के प्रभाव को देखा जाता है या परीक्षण किया जाता है। एक समूह पूर्व पश्चात् अभिकल्प में प्रारम्भिक चरों को नियंत्रित करने में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। इन समस्याओं का समाधान काफी हद तक 'द्विसमेलित समूह अभिकल्प' द्वारा किया जाता है। निर्देशन/परामर्श से सम्बन्धित स्वतंत्र्ा चरों के प्रभाव का मूल्यांकन अत्यन्त विश्वासपूर्वक किया जाता है।
    b. **सर्वेक्षण विधि**- सर्वेक्षण विधि में निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम मूल्यांकन करने के लिए निर्देशार्थियों/परामर्शियों या विद्यार्थियों के व्यवहार तथा समायोजन पर निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के प्रभाव से सम्बन्धित प्रदत्तों का संकलन तथा विश्ल्ोषण किया जाता है। इस विधि का सम्बन्ध समूह की संस्थिति के अध्ययन से होता है। अतः सर्वेक्षण मूल्यांकन द्वारा ''एक बिन्दु पर सर्वेक्षण प्रणाली द्वारा समूह की दशा का अध्ययन'' करके पुनः दूसरे समय पर सर्वेक्षण मूल्यांकन द्वारा समूह की दशा में आने वाले परिवर्तन का आँकलन किया जाता है। इस प्रकार निर्देशन/परामर्श के प्रभाव का मूल्यांकन किया जाता है।
    c. **व्यक्ति अध्ययन विधि**-निर्देशन/परामर्श मूल्यांकन की प्रयोगात्मक तथा सर्वेक्षण विधियों की परिसीमाओं को देखते हुए मनोवैज्ञानिकों ने निर्देशन/परामर्श मूल्यांकन की यह तीसरी विधि 'व्यक्ति अध्ययन विधि' को प्रतिपादित किया। व्यक्ति अध्ययन विधि के अन्तर्गत निर्देशन/परामर्श समिति तथा निर्देशनकर्त्ता/परामर्शदाता निर्देशनार्थी/परामर्शी का लम्बे समय तक विस्तृत अध्ययन करते हैं तथा उसके आधार पर ही निष्पक्ष निर्णय ल्ोते हैं और निर्देशन/परामर्श सेवा के कार्यक्रम का मूल्यांकन किया जाता है। दीर्घकालिक व्यक्ति अध्ययन द्वारा उस व्यक्ति की निर्देशनार्थी के सन्दर्भ में विस्तृत आँकड़े प्राप्त होते हैं जिनके आधार पर निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की सार्थकता का मूल्यांकन सफलता से किया जाता है।

3. **प्रदत्तों के स्रोत:** निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम के मूल्यांकन हेतु अनेक आवश्यक सूचनाओं को संकलित करने की आवश्यकता होती है व्यक्ति या निर्देशनार्थी/परामर्शी से सम्बन्धित से विविध सूचनाएँ निम्न अध्ययनों से प्राप्त की जाती हैं-
    a. माता-पिता (पालक) या संरक्षक से,
    b. शिक्षकों एवं विद्यालय अभिलेख से,
    c. मित्र व सहपाठियों से,
    d. निर्देशनकर्त्ता/परामर्शदाता तथा निर्देशन सहकर्मियों से इत्यादि।
4. **प्रदत्त संकलन हेतु विशिष्ट प्रविधियाँ:** निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के मूल्यांकन के लिए आवश्यक सूचनाओं को संकलित करने के लिए विविध प्रविधियों को प्रयुक्त किया जाता है। इन प्रविधियों में प्रश्नावली प्रविधि सर्वाधिक उपयोग होने वाली प्रविधि है। प्रश्नावली प्रविधि का अनुवर्ती अध्ययनों में सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। एरिक्सन व स्मिथ ने साक्षात्कार प्रविधि को प्रदत्त संकलन हेतु (निर्देशन/परामर्श के सन्दर्भ में) सबसे उत्तम माना है। साक्षात्कार प्रविधि का उपयोग प्रश्नावली प्रविधि के अपेक्षा कुछ सुगम होता है। प्रश्नावली प्रविधि के प्रदत्त संकलन करने में साक्षात्कार की अपेक्षा अधिक कठिनाइयाँ/समस्याएँ आती हैं।

4.4 परामर्श में नैतिकता या नीति संहिता

प्रश्न यह है कि परामर्श में नैतिकता का नीति संहिता की आवश्यकता क्यों है? इसके विभिन्न कारण हो सकते हैं-

१. प्रथम कारण यह है कि नीति संहिता के बना समान रुचियों वाले लोगों के एक समूह को संव्यावसायिक संगठन नहीं माना जा सकता है।

२. Allen (1986) ने कहा, नीतिशास्त्र्ा केवल सामान्य स्तर पर किसी संगठन के संव्यवसायीकरण में ही सहायता नहीं देता है, बल्कि इसे इस प्रकार तैयार किया जाता है कि एक संव्यवसायिक स्तर पर सदस्यों के व्यावसायिक व्यवहार हेतु कुछ दिशा निर्देशों को भी प्रदान किया जाये।

Levenson (1986), Pops & Vetter (1992) तथा **Swanson (1983)** के अनुसार अनैतिक व्यवहार निम्न प्रकार से हो सकते है-

१. गोपनीयता का अतिक्रमण।

२. अपनी संव्यवसायिक दक्षता से आगे बढ़ना।

३. उपेक्षित प्रैक्टिस।

४. विशेषता न होने पर भी उसका दावा करना।

५. किसी सेवार्थी पर अपने मूल्यों को अधिरोपित करना।

६. किसी सेवार्थी में निर्भरता उत्पन्न करना।
७. किसी सेवार्थी के साथ ल्ौंगिक क्रियाकलाप।
८. परस्पर विरोधी हित, जैसे दोहरे सम्बन्ध।
९. विवादास्पद वित्तीय प्रबन्ध, जैसे अधिक शुल्क ल्ोना।
१०. अनुचित विज्ञापन।

Von Hoose and Kotler (1985) ने नीति संहिता के अस्तित्व के लिए तीन कारण बताये हैं-

1. नैतिक मानक संव्यवसाय की सरकार से रक्षा करते हैं। इससे संव्यवसाय को विधान द्वारा नियंत्ाित होने के स्थान पर स्वयं से ही विनियमित होने तथा सफलतातापूर्वक कार्य करने की अनुमति प्राप्त हो जाती है।
2. नैतिक मानक आन्तरिक असहमति तथा कलह को नियन्त्रित करने में सहायता करते हैं, इस प्रकार से संव्यवसाय के अन्दर स्थिरता को प्रोन्नत करते हैं।
3. नैतिक मानक प्रैकटिशनर की जनता से सुरक्षा करते हैं। विशेष रूप से अनाचार से सम्बन्धित वादों में इनके द्वारा बचाव करने में सहायता मिलती है। यदि संव्यवसायिक का व्यवहार नैतिक मार्ग-निर्देशों के अनुसार ही है तो ऐसे व्यवहार को स्वीकृत मानकों के साथ अनुपालन करने वाला माना जाता है।

एक बार यदि हम यह समझ लें कि अनैतिक व्यवहार क्या है तो फिर नीति संहिता के महत्व को समझना सरल हो जाता है। अनैतिक व्यवहार के बहुत रूप हो सकते हैं, परन्तु सर्वाधिक प्रचलित रूप ही यहाँ दिया जा रहा है।

सामान्यतः नैतिक मानक आदर्शात्मक होते हैं तथा इसलिए अधिकतर दशाओं में दिये गये मानकों का पालन करना व्यवहारिक रूप से असम्भव हो जाता है क्योंकि ये मानक विशिष्ट प्रश्नों का उत्तर नहीं देते हैं।

उदाहरण के लिए, जब एक सेवार्थी एक प्रत्यक्ष प्रश्न पूछता है-''क्या आपके विचार में मैं बहुत बुद्धिमान हूँ?'' इसका उत्तर यह है कि, ''सेवार्थी औसत बुद्धि वाला है।''

इस प्रकार की किसी परिस्थिति में परामर्शदाताओं को एक अपरिहार्य चयन का सामना करना पड़ता है तथा उन्हें सच्चाई बतानी होती है। परन्तु सेवार्थी इस सच्चाई का सामना करने के लिए तैयार नहीं भी हो सकता है। इसीलिए किसी नैतिक मानकों की संहिता में बहुत सी विशिष्ट सीमाएँ हो सकती हैं।

Beyner (1971), Talbautt (1988) ने कुछ सीमाओं का वर्णन इस प्रकार किया है-

१. कुछ समस्याएँ ऐसी होती हैं जिनका समाधान नीति संहिता के द्वारा नहीं हो सकता है।
२. नीति संहिता में सुधार लाने में कठिनाइयाँ हैं।
३. संहिता द्वारा निरूपित मानकों में द्वन्द्व भी हो सकता है।

४. कुछ ऐसे कानूनी मुद्दे हो सकते हैं जो संहिता में सम्मिलित न हों।

५. नीति संहिताएँ ऐतिहासिक अभिलेख होते हैं। अतः एक समय में जो व्यवहारिक रूप से स्वीकार्य हैं, बाद के समय या आने वाले समय में उसे अनैतिक माना जा सकता है।

६. कभी-कभी नैतिक तथा कानूनी संहिता के मध्य द्वन्द्व की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है।

७. नीति संहिता में अन्तः सांस्कृतिक मुद्दे सम्मिलित नहीं होते हैं।

८. नीति संहिता के अन्दर हर एक सम्भव परिस्थिति सम्मिलित नहीं होती है।

९. किसी नैतिक विवाद में सम्मिलित समस्त पक्षों के हित को एक साथ क्रमबद्ध रूप से लाना बहुधा कठिन होता है।

१०. नवीन परिस्थिति में क्या किया जाये? परामर्शदाता को यह निर्णय लेने में सहायता देने हेतु नीति संहिताएँ अग्रोन्मुखी अभिलेख नहीं होते हैं।

यद्यपि नीति संहिताएँ लाभदायक तथा अनेकों प्रकार से सफल भी हैं, परन्तु निश्चित रूप से उनकी कुछ सीमाएँ भी हैं। परामर्शदों को ज्ञात होना चाहिए कि इन अभिलेखों पर विचार करते समय वे सदैव उस दिशा-निर्देश को प्राप्त नहीं कर सकेंगे, जिसकी उनको आवश्यकता होती है। परामर्शद सेवार्थियों को परामर्श प्रदान करते समय भ्रमित हो जाते हैं क्योंकि विभिन्न संगठनों ने अलग-अलग नीति संहिताएँ दी हैं। इसलिए परामर्शदों को परामर्श देते समय सही एवं गलत के बारे में स्वयं ही निर्णय ल्ोना चाहिए तथा एक आदर्शक नीति संहिता को भी ध्यान में रखना चाहिए।

क्या नैतिक रूप से कार्य करने हेतु किसी प्रकार के दिशा-निर्देशन हैं? इसका उत्तर हाँ है। परन्तु भारतवर्ष में नहीं है। अतः कोई भी भारतीय विद्वान इसका उत्तर हाँ में नहीं दे सकता है। अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न दिशा-निर्देश प्रस्तुत किये तथा इनमें से अधिकतर लगभग समान हैं।

Stadler (1986) ने परामर्श की गतिविधियों तथा परामर्शदाताओं द्वारा लिए जाने वाले नैतिक निर्णयों से सम्बन्धित चार नैतिक सिद्धान्त दिये हैं-

१. परोपकार-इसका तात्पर्य है, दूसरों की भलाई के लिए कार्य करना तथा उसे हानि से बचाना।

२. अपकार न करना-इसका तात्पर्य है दूसरों को कष्ट या दुःख न पहुँचाना।

३. स्वायत्तता-इसका तात्पर्य है चयन की स्वतंत्रता तथा आत्मनिर्धारण का सम्मान करना।

४. न्याय-निष्पक्षता।

अतः उपर्युक्त सिद्धान्तों में सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया के दौरान परामर्शद को सतर्कता के साथ निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। तत्पश्चात् यह ज्ञात किया जाता है कि परामर्शद ने नैतिक रूप से जिम्मेदारी के साथ कार्य किया है या नहीं।

इसके लिए **Swanson (1983)** ने चार दिशा-निर्देश बताये हैं, जो निम्नलिखित हैं-

१. व्यक्तिगत संव्यवसायिक ईमानदारी बनाये रखना।
२. सेवार्थियों के सर्वोत्तम हित में कार्य करना।
३. व्यक्तिगत लाभ का विचार लाये बिना कार्य करना।
४. इस कथन को न्यायोचित ठहराना कि किसी कार्य के प्रति दी गयी वर्तमान संव्यवसायिक स्थिति में लिया गया निर्णय ही सबसे उत्तम है।

परन्तु उपर्युक्त कथनों में से अन्तिम कथन समस्या उत्पन्न करने वाला है क्योंकि यदि वर्तमान स्थिति नैतिक नहीं है, तब उसके पश्चात् क्या होगा?

नैतिक व्यवहार उस विन्यास में जिसमें किसी व्यक्ति तथा उसके सहयोगियों द्वारा किया जाता है, के अन्दर प्रचलित मनोविकृतियों द्वारा अत्यधिक प्रभावित होता है। नैतिकता को परामर्शद के निर्णय पर छोड़ देना चाहिए, क्योंकि परामर्शद ही सबसे अच्छा निर्णायक है। यदि परामर्शद संव्यवसायिक रूप से प्रशिक्षित हो तथा उसके अन्दर परामर्श हेतु आवश्यक समस्त गुण हों तो वह एक अच्छा निर्णायक हो सकता है।

4.5 सारांश

निर्देशन/परामर्श संगठन करते समय कुछ बिन्दुओं पर विशेष रूप से ध्यान रखते हैं-निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों का मौलिक उत्तरदायित्व निश्चित व्यक्तियों/संस्थाओं पर स्थापित/आधारित हो। निर्देशक, परामर्शी, निरीक्षक, अधीक्षक, प्रधानाचार्य व शिक्षक सभी अपने-अपने कर्त्तव्यों/उत्तरदायित्वों को ठीक से समझें और उनका अनुपालन करें। सबका आपस में सहयोगात्मक सम्बन्ध हो। उद्देश्य पूर्ति हेतु निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम सही ढंग से संगठित तथा प्रशासित हो। निर्देशन/परामर्श सेवा के अपने कुछ सिद्धान्त भी होते हैं, जिनका विस्तृत वर्णन ऊपर किया गया है तथा उसका मॉडल भी प्रस्तुत किया गया है।
निर्देशन/परामर्श का मूल्यांकन के कुछ चरण होते हैं। इनमें प्रमुख हैं-कार्यक्रम के उद्देश्यों का वर्णन करना, परामर्श/निर्देशन सहकर्मियों का मूल्यांकन करना, संसाधनों का आँकलन, संकलित प्रदत्त का विश्लेषण, अभिलेखों की सार्थकता का अवलोकन, सहयोगात्मक सम्बन्धों का विशलेषण, निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम की लक्ष्य प्राप्ति का मूल्यांकन।

निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के मूल्यांकन के लिए प्रमुख रूप से प्रयोगात्मक विधि, सर्वेक्षण विधि एवं व्यक्ति अध्ययन विधि का उपयोग करते हैं।

परामर्श एक नैतिक उद्यम है तथा परामर्श का सबसे सुप्रतिष्ठित सिद्धान्त गोपनीयता को बनाये रखने का है तथा सेवार्थी के हित को ध्यान में रखते हुए कार्य करना है। अतः परामर्श कार्यक्रम के लिए एक नीति संहिता का होना आवश्यक है।

4.6 शब्दावली

निर्देशन परिषद: निर्देशन/परामर्श परिषद का मुख्य कार्य शिक्षण संस्थान प्रधान (प्रधानाचार्य/प्राचार्य) और निर्देशन/परामर्श समिति दोनों के साथ सहयोगात्मक सम्बन्ध में स्थापना करता है।

रेखा संगठन: इस संगठन में अधिकार क्रम का स्तरीकरण रहता है जो प्रशासनिक अधिकारी से विद्यार्थी की ओर चलता है।

व्यक्ति अध्ययन विधि: इसमें निर्देशन/परामर्श समिति तथा निर्देशनकर्त्ता/ परामर्शदाता निर्देशनार्थी/परामर्श प्राप्त करने वाला का लम्बे समय तक विस्तुत अध्ययन करते हैं।

4.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर

१. निर्देशन/परामर्श कार्यक्रमों के स्वरूप को .... में विभाजित किया जा सकता है।
२. निर्देशन/परामर्श कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में मुख्य रूप से .... का उपयोग किया जाता है।
३. सामान्यतः नैतिक मानक .... होते हैं।

उत्तर-(1) दो श्रेणियों, (2) तीन संगठनों, (3) आदर्शात्मक।

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न:

निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रम के संगठन का वर्णन कीजिए।

निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों का मूल्यांकन कीजिए।

परामर्श में नैतिकता या नीति संहिताओं का वर्णन कीजिए।

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

१. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (प्रथम संस्करण-2010), आधुनिक परामर्शन मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी।
२. अमरनाथ राय एवं मधु अस्थाना (2006), निर्देशन एवं परामर्शन, मोतीलाल-बनारसीदास, वाराणसी।

३. उपाध्याय, राधाबल्लभ एवं जायसवाल, सीताराम (2013-14), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

४. गुप्ता, महावीर प्रसाद एवं गुप्ता, ममता (2007), शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।

५. एस0एन0 शर्मा एवं एम0के0 सोलंकी (प्रथम संस्करण-2011), निर्देशन एवं परामर्श, माधव प्रकाशन, ए-23, इन्द्रपुरी कॉलोनी, न्यू आगरा, आगरा।

६. शाह आलम एवं मोहम्मद गुफरान (2011), निर्देशन एवं परामर्श का मूलभूत आधार, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

इकाई 5 निर्देशित, अनिर्देशित एवं समन्वित परामर्श, बाल संरक्षण एवं बाल अधिकार परामर्श (Directive and Non Directive and elective Counselling, Child Protection and child right Counselling)

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 निर्देशित परामर्श

5.4 अनिर्देशित परामर्श

5.5 समन्वित अथवा सारग्राही परामर्श

5.6 बाल संरक्षण एवं बाल अधिकार दसारांश

5.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

5.8 निबंधात्मक प्रश्न

5.9 सन्दर्भ सूची

5.1 प्रस्तावना:-

परामर्श एक बहुआयामी प्रक्रिया होती है। जिसमें अनेक उपागमों एवं प्रविधियों को प्रयुक्त करके व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास, समस्याओं का समाधान अथवा उपचार द्वारा व्यक्ति के जीवन को सहज, उद्देश्यपूर्ण एवं सन्तोषप्रदायी बनाने का प्रयास किया जाता है। निर्देशन एवं सहायता है जो किसी व्यक्ति को अपनी समस्याओं को सुलझाने योग्य बनाने के लिए दी जाती है, निर्देशन सहायता क्रमबद्ध, सुनियोजित तथा सुसंगठित होती है। प्रस्तुत इकाई में आप निर्देशित, अनिर्देशित एवं समन्वित परामर्श के बारे में अध्ययन करेंगे साथ ही बाल संरक्षण एवं बाल अधिकार के बारे में एवं अतिसंवेदनशील (असुरक्षित) बालकों के परामर्श विधियों का अध्ययन करेंगें।

5.2 उद्देश्यः-

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

- निर्देशित परामर्श का अर्थ समझ पायेंगें
- निर्देशित परामर्श की अवधारणायें, चरण, विशेषताये एवं लाभ-हानि को समझ पायेंगें
- अनिर्देशित परामर्श की अवधारणायें, चरण, विशेषताये एवं लाभ-हानि को समझ पायेंगें
- समन्वित परामर्श के चरण, विशेषतायें, लाभ व सीमायें जान सकेंगें
- बाल अधिकार एवं बाल संरक्षण का अर्थ समझ सकेंगें
- असुरक्षित/अति संवेदनशील बालकों के परामर्श को जान सकेंगे।

परामर्श के प्रकार

परामर्श प्रक्रिया की प्रकृति को देखते हुए तथा परामर्शदाता की भूमिका को देखते हुए परामर्श के तीन प्रमुख प्रकार हैं, जो कि निम्नलिखित है।

1. निर्देशित या परामर्श -केन्द्रित (Directive or Counsellor Centred)
2. अनिर्देशीय या प्रार्थी-केन्द्रित या अनुमत परामर्श (Non-Directive or Client Centred)
3. समन्वित परामर्श (Eclectic Counselling)

5.3 निर्देशित परामर्श-केन्द्रित परामर्श (Directive or Counselor Centered)

इसमें परामर्शदाता का अधिक महत्व होता है, वह प्रार्थी की समस्याओं के समाधान के लिए उपाय बताता है और निर्देश देता है। निर्देशित परामर्श परामर्शदाता के इर्दगिर्द घूमता है। वह मैत्री और सहायता द्वारा मधुर-समबन्ध स्थापित करने का प्रयास करता है। इसमें परामर्शदाता बहुत सक्रीय होता है और वह अपने स्वयं के दृष्टिकोण और भावनाएं स्वतंत्र रूप से प्रकट करता रहता है। वह प्रार्थी की अभिव्यक्तियों का मूल्यांकन करता है। इसमें परामर्शदाता प्रमापीकृत प्रश्नों की एक शृंखला (Series of Standardized Questions) बनाता है तथा प्रत्येक का संक्षिप्त उत्तर तय करता है। वह प्रार्थी का अभिव्यक्ति और भावनाओं का व्यक्त करने की आज्ञा नहीं देता। एक विशेषज्ञ के तौर पर वह नेतृत्व करता है, मूल्यॉकन करता है और सुझाव या सलाह देता है।

इस इस विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक मिनिसोटा विश्वविद्यालय के ई0जी0 विलियमसन है। इसमें परामर्शदाता प्रार्थी की समस्या को हल करने का मुख्य उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। इस प्रक्रिया में

परामर्शदाता समस्या की खोज और उसे परिभाषित करता है, निदान (Diagnose) करता है तथा समस्या के बारे में बताता है।

5.3.1 निर्देशीय परामर्श की अवधारणाएं

1. **सलाह देने की सक्षमता (Competency in Giving Advice)-** परामर्शदाता के पास प्रशिक्षण, अनुभव और सूचना होती है। वह समस्या को समझता है और उसके समाधान के बारे में सलाह देने के लिए सक्षम होता है।
2. **परामर्श एक बौद्धिक प्रक्रिया है (Counseling is an Intellectual Process)-** परामर्श प्राथमिक रूप से बौद्धिक प्रक्रिया है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्षों की बजाए बौद्धिक पक्षों पर बल देती है। यदि कोई कुसमायोजित होता है तो उसकी बौद्धिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए उसे परामर्श दिया जाता है।
3. **परामर्श के उद्देश्य समस्या-समाधान स्थिति के रूप में (Counseling Objectives as Problem Solving Situation)**-परामर्श के उद्देश्य समस्या-समाधान स्थिति के माध्यम से उपलब्ध किए जाते है।
4. **प्रार्थी की समस्या-समाधान में अक्षमता (Client's Incapability of Solving the Process)**-इस परामर्श की यह अवधारणा भी है कि प्राथी में सदा ही समस्या के समाधान की क्षमता नहीं होती। इसलिये उसे परामर्श दाता की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार के परामर्श में प्रार्थी को परामर्शदाता के अधीन कार्य करना होता है न कि उसके साथ मिलकर। परामर्शदाता उसकी समस्या का समाधान करने हेतु स्वयं सक्रीय रहता है।

विलियमसन **(Williamson)**- के अनुसार, इस प्रकार के निर्देशन की मूलभूत धारणाएं निम्नलिखित है।

1. इस परामर्श का लक्ष्य है- व्यक्ति के व्यक्तित्व का सभी दिशाओं में विकास में सहायता करना।
2. यह परामर्श व्यक्ति की विशेषता (**Uniqueness**)-को मानता है।
3. यह परामर्श वांछनीयता (**Desirability**)-पर आधारित है न कि परामर्श को व्यक्ति पर थोपना।
4. यह परामर्श केवल तभी दिया जाना चाहिए जब विद्यार्थी किसी समस्या का सामना करें और वह स्वयं इसका
5. इस परामर्श में आपसी सम्बन्ध निष्पक्ष (**Neutral**)- होते है।
6. इस परामर्श प्रार्थी की समस्या के बारे में स्वयं की धारणा पर केन्द्रित होता है।

7. परामर्श प्रार्थी की मर्यादा का सम्मान करता है।
8. परामर्श एक बौधिक प्रक्रिया है
9. अपने प्रशिक्षण, अनुभव तथा ज्ञान के आधार पर परामर्शदाता समस्या के समाधान के लिए अच्छी पहल कर सकता है।

इस प्रकार विलियमसन परामर्शदाता को अध्यापक के रूप में देखता है जिसका कर्तव्य है व्यक्ति को स्वयं की क्षमताएं, दृष्टिकोण और रूचियों को समझने योग्य बनाना, स्वयं की अभिप्रेरणा और जीवन-प्रविधियों को पहचानना आदि।

5.3.2 निर्देशीय परामर्श के चरण (Directive or Counsellor Centred)

निर्देशीय परामर्श के निम्नलिखित चरण है:-

i. **विश्लेषण** इसमें स्थिति या प्रार्थी के बारे में आकड़े और सूचनाएं इकट्ठी की जाती है जिन्हें एक सत्य और विश्वसनीय आधार के रूप में परामर्श-प्रक्रिया में प्रयुक्त किया जा सकता है। विश्लेषण के लिए इन यंत्रों का प्रयोग किया जाता है
    a. संचित अभिलेख
    b. साक्षात्कार
    c. समय विभाजन फार्म
    d. आत्मकथा
    e. उपारव्यानक रिकॉर्ड
    f. मनोवैज्ञानिक परीक्षण

इसके अलावा सभी ऑकड़ों के एकीकरण के लिए केस-हिस्ट्री विधि का प्रयोग किया जाता है। इसमें पारिवारिक इतिहास, मनोरंजनात्मक रूचियॉ और आदतें आदि शामिल होती है।

ii. **संश्लेषण** इसमें प्राप्त ऑकड़ों का इस प्रकार से संक्षिप्तीकरण और संगठन किया जाता है, जिससे विद्यार्थी की सम्पत्ति, उत्तरदायित्व, समायोजन और कुसमायोजनों का पता चलता है।
iii. **निदान** इसके अन्तर्गत समस्या के रूप में जो ऑकडे दिये होते है उनकी व्यवस्था की जाती है। इसमें विद्यार्थियों की विशेषताओं, दुर्बलताओं और दायित्वों को भी शामिल किया जाता है।

निदान में निम्नलिखित तीन मुख्य पद होते है

- समस्या की पहचान करना

- कारणों को ढूँढ़ना
- पूर्वानुमान

iv. **पूर्वानुमान** इस प्रकार किसी भी समस्या की पहचान करके, उसके कारणों को ढू ्ँढकर फिर उसके पूर्वामान द्वारा उसे निर्देशित किया जाता है।

v. **परामर्श या उपचार** जब परामर्शदाता प्रार्थी की सहायता करता है, तो इसमें कई प्रश्नों के उत्तर दिए जाते है। इन प्रश्नों के उत्तर प्रार्थी स्वयं ही अपने लिए देता है, जैसे-मैं स्वयं में ये परिवर्तन किस प्रकार कर सकता हूॅ ? इसका दूसरा विकल्प क्या हो सकता है ? यदि ऐसा ही चलता रहा तो भविष्य में विकास कैसा होगा ? आदि। इसके पश्चात् उसे उपचार या परामर्श दिया जाता है।

vi. **अनुवर्तन** इसके अन्तर्गत परामर्श-प्रक्रिया की प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाता है तथा यह देखा जाता है कि विद्यार्थी की परामर्श के माध्यम से क्या क्या उपलब्धियॉ रही। उसे कितना फायदा हुआ ?

5.3.3 निर्देशीय परामर्श की विशेषताएं

- प्रक्रिया में परामर्शदाता मुख्य भूमिका होती है।
- वह प्रार्थी को सलाह प्रदान करता है।
- इस प्रक्रिया में केन्द्र-बिन्दु व्यक्ति नहीं, बल्कि समस्या है।
- प्रार्थी परामर्शदाता के अधीन कार्य करता है न कि साथ में।
- इस परामर्श में, जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है वे प्रत्यक्ष, प्रभावी और व्याख्यात्मक होती है।
- परामर्श व्यक्ति के व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्ष की बजाय बौद्धिक पक्ष पर अधिक बल देता है।

5.3.4 निर्देशीय परामर्श के लाभ

i. यह विधि समय की दृष्टि से लाभकारी है। इसमें समय की बहुत बचत होती है।

ii. इस प्रकार के परामर्श से समस्या पर अधिक ध्यान दिया जाता है तथा व्यक्ति पर कम।

iii. परामर्शदाता प्रार्थी को प्रत्यक्ष रूप से देख सकता है।

iv. परामर्श व्यक्ति के व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्ष की अपेक्षा बौद्धिक पक्ष पर बल देता है।

v. इस प्रक्रिया में परामर्शदाता प्रार्थी की सहायता के लिए शीघ्र ही उपस्थित हो जाता है, जिससे उसे प्रसन्नता होती है।

5.3.5 निर्देशीय परामर्श की सीमाएं

- इस प्रक्रिया में प्रार्थी अधिक निर्भर होता है और वह अपनी समस्याओं का समाधान करने के भी अयोग्य होता है।
- इसमें प्रार्थी परामर्शदाता से कभी भी स्वतन्त्र नहीं हो पता, यह उत्तर और प्रभावी निर्देशन नहीं है।
- इस प्रकार के निर्देशन में यह अभाव रहता है कि व्यक्ति स्वयं का कोई निर्णय नहीं ले सकता है।
- परामर्शदाता प्रार्थी को भविष्य में गलतियों को करने से बचाने में असमर्थ रहता है।
- विद्यार्थी के बारे में जानकारियों का अभाव रहता है जिससे गलत परामर्श सम्भव है।

5.4 अनिर्देशीय परामर्श या प्रार्थी केन्द्रित या अनुमत परामर्श (Non-Directive of Client-Centred)

अनिर्देशीय परामर्श या प्रार्थी-केन्द्रित परामर्श के प्रमुख कार्ल रोजर्स है । इस सिद्धान्त का विकास बहुत वर्षो में हुआ है। इसलिए इस प्रकार के परामर्श में कई क्षेत्र शामिल होते रहे जैसे- व्यक्तित्व का विकास, सामूहिक नेतृत्व, शिक्षा एवं अधिगम, सृजनात्मकता, पारस्परिक सम्बन्ध इस सिद्धान्त के अनुसार स्वयं व्यक्ति में इतनी क्षमता होती है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान खुद कर सकता है। परामर्शदाता का कार्य तो केवल इतना ही है कि ऐसा वातावरण प्रदान करें जिसमें प्रार्थी वृद्धि के लिए स्वतन्त्र होता है ताकि वह जैसा चाहे वैसा ही व्यक्ति बन सके। इसमें व्यावसायिक और शैक्षिक समस्याओं के संवेगात्मक पक्षों को महत्व दिया जाता है।

प्रार्थी-केन्द्रित परामर्श प्रार्थी के इर्द-गिर्द घूमता है। इसमें प्रार्थी को वार्तालाप करने के लिए और स्वयं के दृष्टिकोणों, भावनाओं और विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसमें परामर्शदाता अधिकतर निष्क्रिय ही रहता है। वह प्रार्थी के विचारों, भावों, भावनाओं और अभिव्यक्तियों में हस्तक्षेप नहीं डालता। परामर्शदाता प्रार्थी की बातचीत करने में पूरी सहायता करता है। शुरूआत में परामर्शदाता प्रार्थी के साथ मधुर संबंध बनाने का प्रयास करता है और धीरे-धीरे विश्वास की भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार के परामर्श में मुक्त अन्त प्रश्न ही पूछे जाते है। ये प्रश्न पूर्ण रूप से रचित नहीं होते। परामर्शदाता का अधिकतर समबन्ध प्रार्थी द्वारा बताई गई संवेगात्मक विषय-वस्तु के साथ से होता है। इसमें प्रार्थी अपनी भावनाओं एवं विचारों को खुलकर प्रकट करता है।

जब प्रार्थी उत्तर दे रहा होता है। उसे इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाता है कि वह अपनी बात खुलकर बताये। जिस प्रकार के प्रश्न परामर्शदाता प्रार्थी से पूछता है उससे प्रार्थी यह महसूस करने लगता है कि परामर्शदाता वास्तव में ही व्यक्तिगत तौर पर प्रार्थी के विचारों का सम्मान करता है और साक्षात्कारकर्ता प्रार्थी में रूचि ले रहा है। अनिर्देशीय परामर्श में प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार दिया जाता है कि वह खुलकर अपनी

भावनाओं को व्यक्त करे। इस प्रकार के परामर्श में निदानात्मक यंत्रों का या तो बहुत ही कम प्रयोग होता है या फिर होता ही नहीं। इसमें प्रार्थी अपनी बुद्धि या समझ से कार्य कर सकता है। इसमें बौद्धिक पक्षों की अपेक्षा संवेगात्मक या भावात्मक पक्षों पर बल दिया जाता है।

5.4.1 अनिर्देशीय परामर्श की मूलभूत अवधारणाएं

1. **व्यक्ति की मर्यादा में विश्वास** (Belif in the dignity of man)**-**रोजर्स व्यक्ति की मान-मर्यादा में सशक्त विश्वास रखता है। वह व्यक्ति को स्वयं निर्णय लेने में सक्षम मानता है तथा ऐसे करने के उसके अधिकतर को स्वीकार करता है। व्यक्ति अपने निणर्यों में चाहें सही हो या गलत उनमें विश्वास करता है।
2. **वास्तवीकरण की ओर प्रवर्ति (**Tendency oward actualization**) -**रोजर्स के प्रारम्भिक लेखों में इस बात पर बल दिया गया है कि व्यक्ति या प्रार्थी की वृद्धि और विकास की क्षमता व्यक्ति की वह आवश्यक विशेषता है जिस पर परामर्श और मनोचिकित्सा विधियॅा निर्भर करती है। रोजर्स के अनुसार व्यक्ति की वंशानुक्रम प्रवर्ति में वृद्धि, समायोजन, सामाजीकरण , स्वतंत्रता आदि दिशाएं सम्मिलित है।
3. **व्यक्ति विश्वास योग्य है (Man is Trustworthy)-** रोजर्स व्यक्ति को बुनियादी तौर पर अच्छा और विश्वास के योग्य मानता है। कभी-कभी व्यक्ति बहुत बार अविश्वसनीय ढंग से भी व्यवहार करता है। व्यक्ति कुछ शक्तियों के साथ पैदा होता है जिन पर नियंत्रण करना आवश्यक है यदि स्वस्थ व्यक्तित्व-विकास होने देना है।
4. रोजर्स के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुद्धि से विवेकशील होता है तथा सही अथवा गलत का निर्णय ले सकता है
5. **जीवन लक्ष्य में स्वतंत्रता:-** प्रार्थी अपने जीवन के उद्देश्य को निर्धारित करने में स्वतंत्र है, चाहें परामर्शदाता की, राय कुछ भी हो
6. **अधिकतम सन्तोष:** प्रार्थी अपने उद्देश्य को जब स्वयं चुनता है तो उसे अधिकतम संतोष की प्राप्ति होती है।
7. **स्वतन्त्र निर्णय क्षमता का विकास:-** परामर्श प्रक्रियाा के थोडे समय बाद प्रार्थी स्वतन्त्र निर्णय लेने की क्षमता विकसित कर लेता है।

जीवन के लक्ष्यों का चयन

1. वह अपने जीवन के लक्ष्यों का चयन स्वयं करे।
2. प्रार्थी को यदि अवसर दिया जाता है तो वह उन लक्ष्यों का चयन करेगा जिससे उसे महान सम्भावित प्रसन्नता प्राप्ति हो।

3. परामर्श-परिस्थिति में उपयुक्त संक्षिप्त समय में इस बिन्दु पर पहुच प्रवर्ति जाना चाहिए जहॉ से प्रार्थी स्वतंत्र रूप से कार्य करने के योग्य हो सके।
4. किसी व्यक्ति को उपयुक्त ढंग से समायोजित होने में संवेगात्मक गड़बड़ी ही प्रारम्भिक रूप से रोकती है।

5.4.2 अनिर्देशीय परामर्श के चरण

कार्ल रोजर्स ने अनिर्देशीय परामर्श के निम्नलिखित चरण बताए है।

1. **समस्यात्मक परिस्थिति को परिभाषित करना (Defining the problematic situation)**-सर्वप्रथम परामर्शदाता को समस्यात्मक परिस्थिति को परिभाषित करना होता है।
2. **भावनाओं की स्वतंत्र अभिव्यक्ति (Free Expression of feeling) -** इसके पश्चात् प्रार्थी को इस बात के प्रति जागरूक किया जाता है कि प्रार्थी अपनी भावनाओं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त कर सकता है तथा परामर्शदाता इस बात की स्वीकृति देता है।
3. **सकारात्मक और नकारात्मक भावनाओं का वर्गीकरण (Classification of Positive & Negative Feeling)**-जब प्रार्थी अपनी भावनाओं को व्यक्त कर देता है उसके बाद उसके नकारात्मक और सकारात्मक भवनाओं की पहचान करनी है और उनका वर्गीकरण होता है।
4. धीरे-धीरे प्रार्थी में सूझ बूझ या अन्तर्दृष्टि का विकास होने लगता है और इसके बाद परामर्शदाता उसकी नई भावनाओं के बाने में चिन्हत करता है।
5. **परामर्श स्थिति समाप्त करना(**Termination of Counselling Situation) **-**इन उपरोक्त चरणों के पश्चात् परामर्शदाता उस स्थिति या बिन्दु (च्वपदज) की तलाश में रहता है जहॉ से परामर्श स्थिति को समाप्त किया जा सके। इसके अनुसार प्रार्थी या परामर्शदाता इस समाप्ति का सुझाव दे सकते है। जब दोनों को यह लगने लगे कि परामर्श के सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो रहें है।

5.4.3 अनिर्देशीय परामर्श की विशेषतायें

i. यह प्रार्थी केन्द्रित परामर्श (Client Centered Counselling) है।
ii. यह इस सिद्धान्त पर आधारित होता है कि व्यक्ति में इतनी क्षमता और शक्ति होती है जिससे कि उसकी वृद्धि और विकास हो सके ताकि वह व्यक्ति वास्तविकता में परिस्थितियों का सामना कर सके।
iii. इस परामर्श में परामर्शदाता सबसे अधिक निष्क्रिय होता है।
iv. व्यक्ति जैसा है उसे वैसा ही स्वीकार किया जाता है और वह अपने किसी भी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने में स्वतंत्र होता है।
v. इसके द्वारा मनोवैज्ञानिक समायोजन में सुधार होता है।
vi. इसके प्रयोग से मनोवैज्ञानिक तनाव कम होते है।

vii. इस प्रकार के परामर्श से सुरक्षात्मकता में कमी आती है।

viii. प्रार्थी का व्यवहार संवेगात्मक रूप से अधिक परिपक्व माना जाता है।

ix. प्रार्थी केन्द्रित परामर्श से सम्बन्धित शोध के द्वारा ये पता चला है कि प्राथमिक स्कूल के विद्वार्थियों को यदि इस तरह का परामर्श दिया जाये तो उनमें पठन सुधार देखने को मिलता है।

x. प्रार्थी केन्द्रित परामर्श में परामर्शदाता का लक्ष्य होता है कि वह प्रार्थी के स्वयं के संगठन और कार्यशीलता में परिवर्तन लायें

xi. इस परामर्श की विचारधारा निर्देशीय परामर्श (Directive Counselling) के बिल्कुल उल्टी है।

xii. इस परामर्श में सम्पूर्ण उत्तर दायित्व प्रार्थी या व्यक्ति पर ही रहता है।

5.4.4 अनिर्देशीय परामर्श के लाभ (।कअंदजंहमे व ि छवद.क्पतमबजपअम ब्वनदेमससपहद)

i. इस परामर्श से प्रार्थी में समस्या-समाधान की योग्यता उत्पन्न होना निश्चित है चाहें यह प्रक्रिया बहुत धीमी हो।

ii. प्रार्थी-केन्द्रित विचारधारा होने के कारण अन्य अनावश्यक गतिविधियों और परीक्षणों आदि से बचाव हो जाता है।

iii. इसमें समस्या को प्रार्थी के अचेतनमन के स्तर से चेतनमन के स्तर पर लाते है। जिससे वह तनाव मुक्त होता है।

iv. इस प्रकार का परामर्श बहुत लम्बी अवधि तक के लिए अपने प्रभाव छोड़ता है।

5.4.5 अनिर्देशीय परामर्श की सीमाएं (Advantages of Non-Directive Counseling)

1. इसमें प्रार्थी को अपने वर्तमान दृष्टिकोणों की स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति की आज्ञा होती है, लेकिन इसमें यह बताने का प्रयास नहीं किया जाता है कि ये वर्तमान दृष्टिकोण क्यों होते है।इसमें भूतकाल के बारे में कोई खोज नहीं ,कोई सुझाव नहीं है।
2. परामर्शदाता का लचीलेपन की आज्ञा का अभाव भी इस परामर्श की एक कमी है।
3. इसमें बात की ओर ध्यान नहीं दिया जाता कि उद्दीपक स्थिति और वातावरण की प्रकृति व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करती है।
4. प्रार्थी-केन्द्रित परामर्श सिद्धान्त के अन्तर्गत बहुत सी परामर्श-परिस्थितियॉ सफलतापूर्वक नहीं आती।
5. प्राथी के साधनों, निर्णयों और बुद्धि पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।
6. सभी समस्याएं केवल बोलकर ही हल नहीं हो सकती।
7. यह सभी स्कूलों में संभव नहीं क्योंकि परामर्शदाता को कई विद्यार्थियों को देखना होता है।

8. कई बार परामर्शदाता की निष्क्रियता से प्रार्थी अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति में झिझक महसूस करता है।

5.5 समन्वित परामर्श (Ecletic Counselling)

अर्थ (Meaning)

कई बार कई परामर्शदाता न तो निर्देशीय परामर्श की विचारधारा से सहमत है और न ही अनिर्देशीय परामर्श की विचारधारा से, ऐसी परिस्थिति में परामर्शदाता एक अन्य प्रकार की परामर्श प्रक्रिया को चुनता है । यह विचारधारा निर्देशीय और अनिर्देशीय (Directive & Non-directive Counselling) परामर्श की विचारधाराओं के मध्य का परामर्श है। इसी मध्य के परामर्श की विचारधार को ही 'समन्वित परामर्श' या 'समाहारक परामर्श' या ''संकलक परामर्श'' कहा जाता है।

इस प्रकार के परामर्श में परामर्शदाता न तो अधिक सक्रिय होता है और न ही अधिक निष्क्रिय होता है। इस प्रकार के परामर्श में पहले व्यक्ति की आवश्यकताओं और उसके व्यक्तित्व का अध्ययन परामर्शदाता द्वारा ही किया जाता है। उसके बाद परामर्शदाता उन प्रविधियों का चयन करता है जो व्यक्ति के लिए अधिक उपयोग या सहायक रहेगी।

इस परामर्श-प्रक्रिया में परामर्शदाता पहले निर्देशीय परामर्श विधि के अनुसार शुरू कर सकता है तथा कुछ समय बाद अनिर्देशीय परामर्श विधि को शुरू कर सकता है तथा कुछ समय बाद अनिर्देशीय परामर्श विधि का अनुसरण कर सकता है या इसके विपरीत-जैसा स्थिति चाहैं। इसमें प्रविधियॉ परिस्थिति और प्रार्थी के अनुसार होती है। इस प्रकार के परामर्श में जो प्रतिधियॉ प्रयोग की जाती है- वे हैं पुनः विश्वास , सूचना प्रदान करना, केस-हिस्ट्री, परीक्षण इत्यादि। इस प्रकार इस समन्वित परामर्श में दोनो, परामर्शदाता और प्रार्थी सक्रिय और सहयोगात्मक होते है। दोनों बारी-बारी में वार्तालाप करते है और संयुक्त रूप से समस्या का समाधान करते है।

5.5.1 समन्वित परामर्श के चरण (Steps in Eclectic Counselling)

समन्वित परामर्श के मुख्य चरण निम्नलिखित है।

1. **प्रार्थी की आवश्यकताओं और व्यक्तित्व की विशेषताओं का अध्ययन (Study of the needs & Personality Characteristics of client)-** इसके अन्तर्गत परामर्शदाता सबसे पहले प्रार्थी की आवश्यकताओं के बारे में छानबीन करता है। इसके बाद वह व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशेषताओं के बारें में जानकारी एकत्रित करता है।

2. **प्रविधियों का चयन (Selection of Techniques)-** इसके बाद आवश्यकतानुसार उपयुक्त प्रविधियों चयन किया जाता है तथा उनका प्रयोग किया जाता है। इन प्रविधियों का प्रयोग व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार ही किया जाता है। ताकि परिणाम सही प्राप्त हो सकें।
3. **प्रविधियों का प्रयोग (Application of Techniques)-** जिन प्रविधियों को चुना जाता है उनकी उपयोगिता प्रार्थी की परिस्थिति के अनुसार ही देखी जाती है और परिस्थिति अनुसार उनका प्रयोग किया जाता है।
4. **प्रभावशीलता का मूल्यांकन (Evaluation of Effectiveness)-** इसके अन्तर्गत प्रभावशीलता का मूल्यांकन विभिन्न विधियों से किया जाता है।
5. **परामर्श की तैयारी** -प्रार्थी की समस्या व स्थिति के अनुसार परामर्श की आवश्यक तैयारी की जाती है।
6. **प्रार्थी और अन्य व्यक्ति की राय प्राप्त करना-** परामर्श सम्बन्धी कार्यक्रम एवं अन्य उद्देश्यों के लिए प्रार्थी तथा उससे सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों से राय प्राप्त की जाती है और तब उसे आगे बढाया जाता है।

5.5.2 समन्वित परामर्श की विशेषताएं (Characteristics of Eclectic Counselling)

समन्वित परामर्श की विशेषताएं निम्नलिखित हैः-

1. इसमें वस्तुनिष्ठ एवं समन्वयपरक विधियों का प्रयोग किया जाता है।
2. परामर्श के शुरू में प्रार्थी की सक्रियता वाली प्रविधियों का प्रयोग अधिक होता है और इसमें परामर्शदाता निष्क्रिय होता है।
3. इसमें कार्य-कुशलता एवं उपचार प्राप्त करने को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है।
4. इसमें प्रार्थी के व्यय को ध्यान में रखा जाता है।
5. इस प्रकार के परामर्श में समस्त विधियों और प्रविधियों के प्रयोग के लिए परामर्शदाता में व्यावसायिक कुशलता एवं दक्षता का होना अनिवार्य होता है।
6. प्रार्थी की आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही निर्णय लिया जाता है कि निर्देशीय विधि का प्रयोग किया जाए या अनिर्देशीय विधि का।
7. प्रार्थी को अवसर उपलब्ध कराया ताकि वह स्वयं समस्या का हल खोज सके।

5.5.3 समन्वित परामर्श के लाभ (Advantage of Eclectic Counselling)

1. यह परामर्श प्रार्थी के लिए लाभदायक होता है।
2. इसमें परामर्शदाता पहले उसके व्यक्तित्व का अध्ययन करता हैं
3. इस परामर्श में दोनों का परस्पर सहयोग होता है।
4. इसमें प्रार्थी के संवेगात्मक एवं बौद्धिक पक्ष दोनों पर ध्यान दिया जाता है।

5.5.4 समन्वित परामर्श की विशेषताएं

समन्वित परामर्श की सीमाएं है:-

1. कुछ लोगों का कहना है कि परामर्श का यह प्रकार अस्पष्ट और अवसरवादी है।
2. निर्देशीय और अनिर्देशीय प्रकार के परामर्शों को मिश्रित नहीं किया जा सकता।
3. इसमें यह प्रश्न उठता है कि प्रार्थी को कितनी स्वतन्त्रता प्रदान की जाए? इसके बारे में कोई निश्चित नियम नहीं हो सकता।

5.6 बाल संरक्षण एवं बाल अधिकार

भारत में 1974 में एक राष्ट्रीय पालिसी बनाई गयी। इसके अन्तर्गत ये प्रावधान रखा गया कि जन्म से पहले एवं बाद में अर्थात् बच्चे की वृदि अवधि में उसके शारीरिक मानसिक एवं सामाजिक विकास हेतु पर्याप्त सेवाओं की आवश्यकता है। बाल अधिकारों की सुरक्षा के लिए भारत सरकार ने 29 दिसम्बर 2006 को भारत के राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग का गठन हुआ।

इस आयोग के निम्नलिखित दायित्व है:-

- बच्चों के अधिकारों के संरक्षण के लिए सुझाये गये उपायों की निगरानी व जॉच करना।
- आतंकवाद, हिंसा, दंगों, घरेलु हिंसा, तस्करी, एच0आई0वी0/एड्स, शोषण, अश्लील साहित्य से प्रभावित कारकों की जॉच करना और उसके लिये उपचारात्मक उपायाएं को बताना।
- समाज के विभिन्न वर्गो के बीच बाल अधिकार एवं संरक्षण साक्षरता का प्रचार-प्रसार करना। इसके अन्तर्गत उन श्रोतो पर ध्यान केन्द्रित करना है जो कुछ परिस्थितियों में पिछडे है।

बाल अधिकार एवं बाल संरक्षण में अन्तर

इन दोनों अवधारणाओं के बीच अन्तर को समझना महत्वपूर्ण है।

बाल अधिकार, सिद्धान्तों या आदर्शो का एक समूह है। जबकि बाल संरक्षण एक प्रणाली है, जिसके द्वारा एक बच्चें के अधिकारों का प्रयोग किया जा सकता है।

बाल अधिकार के प्रकार

1. **जीवन जीने का अधिकारः-** पहला हक जीने का होता है, फिर खाने-पीने का। चाहे लडका हो या लड़की।
2. **संरक्षण का अधिकारः**- शोषण से रक्षा का अधिकार। एक बच्चे का शोषण, का अधिकार घर-परिवार एवं बाहर।
3. **सहभागिता का अधिकारः-**एक बच्चे को अधिकार होता है कि वह स्वयं से जुडे हुए मुददों के बारे में फैसला लें। इसके अन्तर्गत अपने भावों की अभिव्यक्ति, सूचना आदि आते है। प्रत्येक बच्चे का ये अधिकार होता है कि अपने मूलभूत अधिकार एवं उसकी स्थिति को जानें।
4. **विकास का अधिकारः-** इसके अन्तर्गत बच्चों का संवेगात्मक, मानसिक, शारीरिक विकास का अधिकार है। संवेगात्मक विकास पर्याप्त एवं स्नेह के द्वारा मानसिक विकास, शिक्षा एवं शिक्षण के द्वारा शारीरिक विकास खेलकूद, मनोरंजन एवं पोषण के द्वारा पूरा होता है।

5.6.1 असुरक्षित/अतिसंवेदनशील बाल का अर्थ

वह बाल जो स्वयं की रक्षा करने में असमर्थ हो, उसे अतिसंवेदनशील बाल की श्रेणी में रखा जाता है। इस प्रकार का बच्चा बचाव नहीं कर सकता और परिस्थितियों से मुकाबला करने में असमर्थ होता है। जैसे बाल शोषण, गली के बच्चे, असक्षम बच्चे और औषधि व्यसन आदि। असुरक्षा अथवा अतिसंवेदनशीलता को शारीरिक एवं संवेगात्मक विकास के आधार पर निर्धारित किया जाता है। इसके लिए कई कारक जिम्मेदार होते है जो निम्न प्रकार से हैः-

1. **आयु:** वह बच्चे जिनकी उम्र 06 वर्ष से कम हो, वह ज्यादा सुरक्षा के लिये आश्रित होते है।
2. **शारीरिक एवं मानसिक अक्षमता:** वह बच्चे जो किसी भी शारीरिक एवं मानसिक अक्षमता से ग्रस्त होते है, वह ज्यादा अपेक्षित होते है। समाज द्वारा उन्हें हीन भावना से देखा जाता है।
3. **शक्तिहीनता:** यदि बच्चे को उसके परिवार एवं समाज के द्वारा शक्ति/उत्साह नहीं दिया जाता है और उनके अधिकारों को पूरा करने की जिम्मेदारी नहीं दी जाती है वह असुरक्षित एवं संवेदनशील होते है। अर्थात् शक्ति अथवा शक्तिहीनता बच्चे को बाहरी वातावरण एवं परिस्थितियों से प्राप्त होती है।
4. **अदृश्य:** वह बच्चे जो समाज के या परिवार द्वारा बहिकृत होते है, जिनकी कोई पहचान नहीं होती है, वह अधिक असुरक्षित होते है। इस प्रकार से आपने असुरक्षित/अतिसंवेदनशील बच्चों के कारकों का पढा, इसी आधार पर इन बच्चों को परामर्श दिया जाता है जो निम्न प्रकार से हैः-

5.6.2 शोषित बालकों का परामर्श:- बाल शोषण की समस्या अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार के अन्तर्गत एक गम्भीर मुद्दा है। विभिन्न प्रकार के शोषण में 05 से 12 वर्ष के उम्र के बच्चे शोषण एवं दुव्यर्वहार के सबसे अधिक

शिकार होते है। इन शोषणों में शारीरिक, यौन एवं भावनात्मक शोषण शामिल होता है। इन स्थितियों में बच्चे एवं परामर्शदाता के बीच परिपक्व सम्बन्ध स्थापित होने चाहिए ताकि उसे जो आघात पहुॅचा है, उसे परामर्शदाता पुनःस्थिति में लाने का प्रयास कर सके। सर्वप्रथम आशा एवं विश्वास दिलाना होता है। इसके बाद जब इन मुददों पर परामर्शदाता की एक उपयुक्त सूझ/समझ स्थापित हो जाती है तब बह बच्चे के घरवालों से सम्पर्क करता है और उन्हें सम्बन्धित उपचार योजना को बताता है जिसमें हफ्तें एवं महिने का समय लग सकता है। बच्चे को पुनःस्थिति में लाने हेतु परिवार वालों के विशेष सहयोग की आवश्यकता होती है अर्थात् स्नेह एवं सही देखभाल ।

परामर्शदाता एक समूह सत्र भी आयोजित करता है, जिससे यह लाभ होता है कि जो शोषित बालक है उसे अपनी तरह के बालकों का साथ मिलता है और सभी की भावनायें, समस्यायें, एक प्रकार की होती है जिससे वह स्वयं को अकेला महसूस नहीं करता है । इसके अलावा शारीरिक शोषण बालक की आयु, प्रकार पर निर्भर करता है कि उसे किस तरह की उपचार विधि प्रदान की जाये। इसके लिए मनोविश्लेषण, खेल उपचार विधि, संज्ञानात्मक-व्यवहार चिकित्सा, विश्र्रान्ति विधि आदि है ।

१. **अक्षम बालकों का परामर्श:-** जब बालकों में शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की अक्षमता हो तो उसे अक्षम बालकों की श्रेणी में रखा जाता है। इसके कई कारण हो सकते है।
    a. संक्रमति बिमारियॉ
    b. बाल्यकाल में संक्रमण
    c. पोषण की कमीं
    d. पूर्व मातृत्वता
    e. अन्तजार्तीय विवाह

    इन बालकों में शारीरिक अक्षमता के साथ-साथ मानसिक प्रभाव भी देखने को मिलते है। इनके परामर्श हेतु सामूहिक परामर्श, व्यक्ति प्रबन्धन, पुर्नवास परामर्श, पारिवारिक परामर्श अदि विधियॉ प्रयुक्त की जा सकती है।

२. **व्यवहारात्मक चिकित्सा**- इसमें माता-पिता, एवं केयर को यह सहायता दी जाती है कि वह किस तरह से प्रार्थी को प्रोत्साहित करे और समाज में सफलता प्राप्त कर सके।
३. **पारिवारिक सहायता एवं शिक्षा-** इसके अन्तर्गत असक्षम बालकों के माता-पिता को उनसे सम्बन्धित सूचना दी जाती है और उन्हें उस समस्या अथवा बीमारी के बारे में अवगत कराया जाता है ताकि

बालक को वह पर्याप्त सहायता दे सके। इसके साथ ही शिक्षा द्वारा बालक की मानसिक स्थिति को भी सुधारा जा सकता है। इसके अलावा निम्न प्रकार की अन्य सेवायें भी दी जाती है

४. **चिकित्सकीय व्यवहारात्मक सेवा-** जब बालक की स्थिति अत्यधिक गम्भीर होती है और उसे चिकित्सालय में भर्ती करवाने की स्थिति आ जाती है तब इस सेवा का प्रयोग किया जाता है। इसके साथ ही माता-पिता को भी पर्याप्त परामर्श दिया जाना सुनिश्चित होता है।

५. **व्यवहारात्मक जीवन कोचिंग**- बाल्यावस्था, जिसे संक्रमण अवस्था भी कहा जाता है, उस समय इस कोचिंग के द्वारा उसे विकासात्मक कौशल सिखाये जाते है। जिससे वह आत्मनिर्भर बन सके एवं अपनी अक्षमता के कारण उसकी हीन भावना को निकाला जा सके

६. **औषधि व्यसन का परामर्श-** वह नशीले पदार्थ जो शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से हानिकारक है। जिनसे क्षणिक प्रसन्नता प्राप्त होती है, इन पदार्थो का अधिक उपयोग (क्तनह ंइनेम) कहलाता है। औषधि व्यसन वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति शरीर संचालन हेतु मादक पदार्थो या औषधियों पर निर्भर हो जाता है।

इनमें मुख्य पदार्थ हैः- धूम्रपान, चरस, गॉजा, अफीम, कोकीन, मर्फिन के इन्जेक्शन, शराब। इन व्यसनों का पता चलने पर इनका उपचार संभव हो पाता है। बालकों में इन व्यसन की लत होने पर सर्वप्रथम परामर्श की मुख्य भूमिका होती है। इसके द्वारा व्यवहार में सकारात्मक सुधार अथवा बदलाव देखे जाते है।

व्यवहार चिकित्सा के अन्तर्गत परामर्श मनोविश्लेषण, सामूहिक एवं परिवार चिकित्सा आदि इसके उपचार हेतु प्रयोग किये जाते है।

परामर्श के निम्न उद्देश्य होते है।

- **संज्ञानात्मक**:- समस्या को समझना एवं समाधान
- **व्यवहारात्मक**:- नई आदतों को विकसित करना और पुरानी आदतों को छोड़ना।
- **परिवारिक**:- पारिवारिक सदस्यों को समस्या से अवगत कराना और उनसे सहयोग की अपेक्षा करना। इस तरह की समस्या से जूझ रहे बालक को संवेगात्मक सहयोग की आवश्यकता होती है जो उसे पारिवार वालों से प्राप्त होती है।

यूनिसेफ मानता है कि बाल संरक्षण बच्चों के दुरूपयोग, शोषण, हिंसा एवं अपेक्षा का निवारण करता है। यह बच्चों को अपने अस्तित्व एवं विकास के अन्य अधिकारों तक प्रवर्तिने की अनुमति भी देता है। बाल संरक्षण यह सुनिश्चित करता है कि बच्चों के पास निर्भर होने के लिए एक सुरक्षा जाल है और यदि वे किसी जोखिम या असुरक्षित परिस्थिति में आ जाते है तो उन्हें बचाने एवं उनकी देखभाल की पूरी जिम्मेदारी सरकार की योजना के

अन्तर्गत आती है। सरकार द्वारा एकीकृत बाल संरक्षण योजना चलाई गयी है। जिसके मुताबिक संरक्षण का अर्थ है बच्चों के बचपन को सुरक्षित रखना एवं जो बच्चे कमजोर है तो उनकी यह कमजोरी उन्हें किसी हानिं एवं हानिकारक परिस्थितियों से बचाकर की जा सकती है।

5.7 सारांश

प्रकृति एवं परामर्शदाता की भूमिका के अनुसार परामर्श के मुख्य तीन प्रकार होते हैः-

१. निर्देशित परामर्श
२. अनिर्देशित परामर्श
३. समन्वित परामर्श

- निर्देशित परामर्श के मुख्य प्रवर्तक ई0जी0 विलियमसन थे।
- निर्देशित परामर्श का केन्द्र बिन्दु परामर्शदाता होता है अर्थात् उसकी मुख्य भूमिका होती है।
- वह सक्रिय रहता है तथा अपने स्वयं के दृष्टिकोण एवं भावनायें स्वतंत्र रूप से प्रकट करता है।
- अनिर्देशित परामर्श के मुख्य प्रवर्तक कार्ल आर रोजर्स है।
- इस परामर्श में प्रार्थी केन्द्र होता है और उसे उसके विचारों, भावनाओं को अभिव्यक्त करने को प्रोत्साहित किया जाता है।
- रोजर्स के अनुसार व्यक्ति की मर्यादा मे विश्वास, व्यक्ति विश्वास योग्य एवं बुद्धि से अधिक विवेकशील है।
- परामर्श का तीसरा प्रकार समन्वित परामर्श है। इसमें प्रार्थी एवं परामर्शदाता दोनों की भूमिका होती है।
- इसमें परामर्शदाता न तो सक्रिय होता है और ना ही निक्रिष्य।
- भारत में 1974 में एक राष्ट्रीय पालिसी बनाई गयी।
- 2006 में राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग का गठन हुआ।
- बाल अधिकार के निम्नलिखित प्रकार हैः जीवन जीने का अधिकार, संरक्षण का अधिकार, सहभागिता का अधिकार एवं विकास का अधिकार
- असुरक्षित एवं अतिसंवेदनशील वह बालक है जो स्वयं की रक्षा करने में असमर्थ हो।
- इन बालकों के परामर्श निम्न प्रकार के है: शोषित बालकों का परामर्श, अक्षम बालकों का परामर्श, औषधि व्यसन का परामर्श

5.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नः

सत्य/असत्य में उत्तर दीजिये:-

१. निर्देशित परामर्श के प्रवर्तक कार्ल रोजर्स थे।
२. निर्देशित परामर्श में परामर्शदाता की मुख्य भूमिका होती है।
३. अनिर्देशित परामर्श को प्रार्थी केंन्द्रित परामर्श भी कहते है।
४. सुग्राहि परामर्श में प्रार्थी केन्द्र बिन्दु होता है।
५. राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग का गठन 2006 में हुआ।
६. परामर्श एक बौद्धिक प्रक्रिया है।
७. अनिर्देशित परामर्श का अन्तिम चरण अनुवर्तक है।
८. प्रार्थी केन्द्रित परामर्श की अवधारणा है कि व्यक्ति विश्वास योग्य है।

उत्तर

१. असत्य
२. सत्य
३. सत्य
४. असत्य
५. सत्य
६. सत्य
७. असत्य
१. सत्य

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

परामर्श से आप क्या समझते है? निर्देशित परामर्श की विशेषतायें, अवधारणायें बताइये।

२. अनिर्देशित परामर्श के चरण, अवधारणायें एवं लाभ-सीमाओं को बताइये।
३. सुग्राही (समन्वित) परामर्श के चरण एवं विशेषताओं को लिखिये।
४. बाल संरक्षण एवं बाल अधिकार में अन्तर बताइये एवं असुरक्षित बालकों के परामर्श विधियों पर प्रकाश डालिये।

5.10 सन्दर्भ सूची:-

1. बाल मनोविज्ञान (1995) डा0 प्रफुल्ल एन0 दबे, डा0 विपिन सिंह रायजादा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

2. निर्देशन एवं परामर्शन (2005) अमरनाथ राय, मधु अस्थाना, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
3. https://hi.m wekipedia.org
4. https://wikaspedia.org
5. IGNOUS (2005) Counselling Psychology MPCE-021
6. शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श की भूमिका (2015) राधाबल्लभ उपाध्याय, सीताराम जायसवाल, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

इकाई 6 परामर्श:- समाधान-केंद्रित, एकीकृत, एच. आई. वी. चिंता/ एड्स और लत (Counseling:- Solution-focused, Integrated, HIV/AIDS and Addiction/Anxiety)

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 समाधान केन्द्रित चिकित्सा परामर्श
6.4 समाधान-केंद्रित चिकित्सीय प्रक्रिया
6.5 समाधान-केंद्रित चिकित्सा के मूल सिद्धांत
6.6 समाधान-केंद्रित चिकित्सा के सामान्य घटक
6.7 समाधान-केंद्रित चिकित्सा का अन्य उपचारों के साथ जुड़ाव
6.8 समन्वयवादी परामर्श
6.9 एच.आई. वी/एड्स परामर्श
6.10 एच आई वी/एड्स में मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप
6.11 व्यसन/चिंता परामर्श
6.12 सारांश
6.13 शब्दावली
6.14 संदर्भ
6.15 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने निर्देशित एवं अनिर्देशित परामर्श के बारे मे जाना| प्रस्तुत इकाई में आप समाधान केन्द्रित परामर्श,समन्वयवादी परामर्श का अध्ययन करेंगे साथ ही एच आई वी/एड्स परामर्श एवं व्यसन/चिंता परामर्श के बारे में जानेंगे |

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- परामर्श के विशिष्ट प्रकारों की गिनती कर सकेंगे।
- समाधान केन्द्रित परामर्श की व्याख्या कर सकेंगे।
- समन्वयवादी परामर्श को स्पष्ट कर सकेंगे।

- एच आई वी/एड्स परामर्श का वर्णन कर सकेंगे।
- व्यसनध्धिंता परामर्श को स्पष्ट कर सकेंगे।
- विभिन परामर्शों में प्रयुक्त उपचारों को स्पष्ट कर सकेंगे।

6.3 समाधान केन्द्रित परामर्श

समाधान केन्द्रित परामर्श (SFBT), जिसे केवल सॉल्यूशन-फोकस्ड थेरेपी भी कहा जाता है, एक लक्ष्य केंदित मनोचिकित्सा दृष्टिकोण है जिसे स्टीव डे शजर (1940-2005), और इनसो किम बर्ग (1934-2007) और 1970 के अंत में उनके सहयोगियों ने (मिल्वौकी, विस्कॉन्सिन में) शुरू किया था । इसकी मान्यता यह है कि प्रार्थी स्वयं परामर्श के उद्देश्य का चयन करेगा तथा परिवर्तन के लिए ज़रूरी उपायों को वह स्वयं ही धारण करता हैं । परामर्शदाता विशिष्ट, लघु व सकारात्मक पदों में विवरण को प्रोत्साहित करता हैं। विवरण समस्या की अनुपस्थिति के बजाय समाधान की उपस्थिति का समर्थन करता हैं । पूर्व घटित घटनाओं के विषय में विमर्श क अपेक्षा अपेक्षित समाधान की अपेक्षा को रोकने के बजाय नयी शुरुआत का समर्थन करता हैं । परामर्शदाता प्रार्थी के लक्ष्यों को तथा प्रार्थी के सन्दर्भ ढाँचा के अनुसार सम्मानपूर्ण, दोषारोपण न करने उपायों को अपनाता हैं ।

6.4 समाधान-केंद्रित चिकित्सकीय प्रक्रिया:

- यह समस्या-समाधान के बजाय समाधान-निर्माण पर आधारित है ।
- चिकित्सक का ध्यान अतीत की बजाय परामर्शी के वांछित भविष्य पर होना चाहिए ।
- परामर्शी को वर्तमान उपयोगी व्यवहारों की आवृत्ति बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है ।
- चिकित्सक परामर्शी के संज्ञान्त्मक अवांछित पैटर्न की पहचान कर सभी सही संभावित विकल्प खोजने में मदद करते हैं ।
- कौशल निर्माण और व्यवहार चिकित्सा हस्तक्षेप से इतर भ, इस मॉडल के अनुसार समस्या का समाधान स्वयं परामर्शी के पास मौजूद होता हैं ।
- परिवर्तन छोटी से बड़ी वृद्धि की ओर अगुवाई करता है ।
- परामर्शी के समाधान, परामर्शी या चिकित्सक द्वारा पहचान की गई समस्या से सीधे संबंधित नहीं होते हैं |
- समस्याओं के निदान और उपचार हेतु परामर्शी को प्रोत्साहित करने के लिए चिकित्सक का संवादात्मक कौशल आवश्यक है |

Corey (1985) के अनुसार “Solution-Focused Brief Therapy differs from traditional treatment in that traditional treatment focuses on exploring problematic feelings, cognitions, behaviors, and/or interaction, providing interpretations, confrontation, and client education.

इसके विपरीत, एसएफबीटी परामर्शी को भविष्य हेतु एक वांछित दृष्टि विकसित करने में मदद करती है, जिसमें समस्या हल हो जाती है । इस प्रकार प्रत्येक परामर्शी लक्ष्यों, रणनीतियों, शक्तियों और संसाधनों की उनकी अपनी उभरती परिभाषाओं के आधार पर समाधान के लिए अपना रास्ता खुद ढूंढता है|यहां तक कि उन मामलों में जहां परामर्शी समाधान के लिए बाहरी संसाधनों का उपयोग करने के लिए आते हैं, उन संसाधनों की प्रकृति को परिभाषित करने व वे कैसे उपयोगी होंगी इसका वह स्वयं नेतृत्व करता है।

6.5 समाधान-केंद्रित चिकित्सीय प्रक्रिया:

सएफबीटी एक दृष्टिकोण है जो समस्याओं के निदान और उपचार पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय परामर्शी को कैसे बदलता है, इस पर केंद्रित है। जैसे, यह परिवर्तन की भाषा का उपयोग करता है । समाधान-केंद्रित साक्षात्कारों में उपयोग किए जाने वाले हस्ताक्षर प्रश्नों का उद्देश्य एक चिकित्सीय प्रक्रिया स्थापित करना है जिसमें व्यवसायी परामर्शी के शब्दों और अर्थों (परामर्शी के लिए क्या महत्वपूर्ण है, वे क्या चाहते हैं, और संबंधित सफलताएं), को सुनते और आत्मसात करते हैं फिर परामर्शी के प्रमुख शब्दों और वाक्यांशों से जोड़कर अगला प्रश्न तैयार करते और पूछते हैं | चिकित्सक फिर से सुनना और आत्मसात करना जारी रखते हैं क्योंकि परामर्शी फिर से उनके संदर्भ के फ्रेम से उत्तर देते हैं, इस प्रकार फिर से परामर्शी की प्रतिक्रियाओ से जुड़कर अगला सवाल तैयार करते और पूछते हैं | यह प्रक्रिया सुनने, आत्मसात करने, जुड़ने की निरंतर प्रक्रिया के माध्यम से होती है। परामर्शी जवाब देता है, चिकित्सक और परामर्शी (client) साथ मिलकर नए और परिवर्तित अर्थों का और समाधानों का निर्माण करते हैं।

संचार शोधकर्ता McGee, Del Vento, and Bavelas (2005) वर्णन करते हैं- This process as creating new common ground between practitioner and client in which questions that contain embedded assumptions of client competence and expertise set in motion a conversation in which clients participate in discovering and constructing themselves as persons of ability with positive qualities that are in the process of creating a more satisfying life.

6.6 समाधान-केंद्रित चिकित्सा के सामान्य घटक:

अधिकांश मनोचिकित्सा बातचीत (conversation) पर आधारित होती है SFBT में इन वार्तालापों के लिए तीन मुख्य सामान्य तत्व हैं।

- इसमें सर्व समावेशी विषय होते हैं, SFBT वार्तालाप परामर्शी की चिंताओं पर केंद्रित होते हैं। इसमें परामर्शी के अपवाद, शक्ति, दृष्टिकोण से संबंधित साधन, समाधान प्राप्त करने हेतु परामर्शी के प्रेरणा स्तर एवं आत्मविश्वास का मापन, और पसंदीदा भविष्य तक पहुँचने की परामर्शी की प्रगति के लिए चल रही स्केलिंग को प्राथमिकता दी जाती है।
- समाधान-केंद्रित(SF) वार्तालाप में सह-निर्माण या परामर्शी में नए अर्थों की एक चिकित्सीय प्रक्रिया शामिल होती है जो काफी हद तक चिकित्सक द्वारा निर्धारित की जाती है, जिसमें परामर्शी द्वारा पूर्व में किये गए वार्तालाप से सम्बन्धित विषयों के बारे में पूछा जाता है
- चिकित्सक कई विशिष्ट प्रतिक्रिया और प्रश्नावली तकनीकों का उपयोग करते हुए परामर्शी को एक पसंदीदा भविष्य दृष्टि का निर्माण करने, अतीत और भविष्य की सफलतम प्रयासों को देखने एवं उसके व्यवहार को वास्तविक बनाने के लिए प्रोत्साहित करता है

भविष्य में अलग-अलग परामर्शी (client) क्या चाहते हैं, इसके बारे में समाधान केंद्रित (SF) वार्तालाप के माध्यम से लक्ष्य तैयार और प्रवर्धित किया जाता है। नतीजतन, एसएफबीटी में, परामर्शी लक्ष्य निर्धारित करता हैं। प्रारंभिक सूत्रीकरण होने के उपरांत परामर्शी चिकित्सा लक्ष्यों से संबंधित अपवादों पर ध्यान केंद्रित करता है साथ ही परामर्शी अपने लक्ष्य प्राप्ति की उपयोगी अगले चरणों का सह-निर्माण करता हैं।

6.7 SFBT का अन्य उपचारों के साथ जुड़ाव

SFBT, योग्यता-आधारित लचीलापन-उन्मुख मॉडल के साथ साथ संज्ञानात्मक-व्यवहार थेरेपी के समान है हालांकि बाद वाले मॉडल में चिकित्सक परामर्शी को दिए गए अभ्यास कार्य में परिवर्तन करता हैं, जबकि SFBT में चिकित्सक परामर्शी को अपने स्वयं के अवांछनीय व्यवहार को कम करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। एसएफबीटी में नैरेटिव थैरेपी (Freedman & Combs, 1996) की भी कुछ समानताएं हैं, जिसमें दोनों एक गैर-पैथोलॉजी रुख अपनाते हैं, परामर्शी केंद्रित होते हैं, और दृष्टिकोण के हिस्से के रूप में नई वास्तविकताओं को बनाने का काम करते हैं। एसएफबीटी ऐसे किसी भी दृष्टिकोण के अंतर्निहित दर्शन और मान्यताओं के संदर्भ में सबसे अधिक भिन्न है जिनमे "काम करने के लिए" या इसे हल करने के लिए एक समस्या पर गहन ध्यान देने की आवश्यकता होती है, या जिनमें वर्तमान व भविष्य के बजाय अतीत पर ज्यादा जोर दिया जाता है |

6.8 समन्वयवादी परामर्श

विगत कुछ दशकों से परामर्शन के क्षेत्र में विभिन्न उपागमों के समन्वयन का प्रचलन बढ़ा हैं। अनेक समन्वयवादी उपागमों का विकास हुआ तथा अनेक पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ। समन्वयन की दिशा में यह प्रगति एक आन्दोलन का रूप ले चुकी हैं। होलैंडर्स (2003) इस आन्दोलन के कारण के रूप में निम्नवत पाँच आधुनिक प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हैं।

i. **परामर्शन के क्षेत्र की परिपक्वता**- होलैंडर्स समन्वयन की दिशा में हो रही प्रगतियों को परामर्शन मनोविज्ञान की परिपक्वता की एक स्वाभाविक परिणति मानते हैं।

ii. **अस्त व्यस्त दशा से सुव्यवस्था की दिशा में अग्रसर होना**- उपागमों की बढती हुई संख्या जहाँ उस क्षेत्र की बढती परिपक्वता एवं संवृद्धि की परिचायक है, वहीं इस क्षेत्र के अस्त व्यस्त रूप को प्रस्तुत करती है जिससे बचने/बचाने के लिए परामर्शदाता समन्वय की दिशा में, संघटन की दिशा में कार्य करने लगे। होलैंडर्स की इस विषय में प्रतिक्रिया यह

iii. है कि अभी तक इस दिशा में प्रगति मात्र आरंभिक है और अभी तक इस प्रवृत्ति द्वारा उपागमों की संख्या में वृद्धि मात्र ही हुयी हैं। वास्तविक समन्ववयन अभी बाकी प्रतीत होता हैं।

iv. **पूर्व उपागमों की समालोचनात्मक व्याख्या-** गुरु परंपरा से दूर उपागमों की समालोचनात्मक व्याख्या की दिशा में बढ़ते कदम परामर्शन के क्षेत्र में फ्रॉयड, राजर्स, युंग, स्किनर जैसे मुख्य धारा के उपागमों को विकसित करने वाले परामर्शदाताओं की दशा गुरु जैसी हो गयी जिसके अनुयायी उनके द्वारा सुझाये गए मार्ग का अन्धानुकरण करने लगे, किन्तु वैज्ञानिक या दार्शनिक सोच वाले परामर्शदाताओं को इन उपागमों की समालोचनात्मक व्याख्या एवं मूल्यांकान की आवश्यकता का अनुभव हुआ । पॉल (1967) ने परामर्शदाताओं से आग्रह किया कि उपागमों की सीमारेखा से बाहर निकलें, उपागमों के विषय में पूछें कि "किसके द्वारा कौन-सा उपचार इस व्यक्ति की इस विशिष्ट समस्या के लिए किन विशिष्ट दशाओं में अधिक प्रभावशाली होगा?

v. **व्यक्तिगत लक्ष्य अनुसरण की अपेक्षा सामूहिक वृत्तियात्मक जिम्मेदारी पर बल-** जैसे-जैसे परामर्शन के क्षेत्र का प्रसार हुआ परामर्शदाताओं को वृत्तियात्मक संगठनों के माध्यम से अधिकार पत्र की व्यवस्था द्वारा नियंत्रित किया जाने लगा। इस कारण जहाँ परामर्शदाताओं को कोई उपागम अपनाने की स्वतंत्रता प्राप्त होती है वही सामूहिक जिम्मेदारी, एक कूपरे के विचारों को सुनने और लोगों के हित में एककूपरे के समीप आकर कार्य करने का आग्रह भी प्रस्तुत होता हैं।

vi. दार्शनिक परिवेश- बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में दार्शनिक चिंतन के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों, विशेषतः उत्तर आधुनिकतावाद का प्रभाव परामर्शन उपागमों के समन्वयन के रूप में भी प्रकट हुआ। उत्तर आधुनिकताबाद के कारण ऐसे सामाजिक वैचारिक परिवेश की रचना हुई जिसके कारण परामर्शन मनोविज्ञान के क्षेत्र में समन्वचयन एक प्रभावशाली आन्दोलन के रूप में प्रकट हुआ हैं।

१. **संज्ञानात्मक-विश्लेषणात्मक उपचार (Cognitive Analytic Therapy)-** संज्ञानात्मक विश्लेषणात्मक उपागम का विकास एंथानी राइल (Anathony Ryle, 1927) द्वारा 1980 एवं 1990 के दशक में किया गया। राइल ने इस विषय में तीन पुस्तकों- Cognitive-Analytic Therapy 19990; Cognitive-Analytic Therapy: Developments in Therepy and Practices (Edited), 1995; Cognitive-Analytic Therapy Borderline Personality Disorders: the Method and the Model 1997; का लेखन/संपादन किया. यह सिद्धांत संक्षिप्त नाम CAT रूप में जाना जाता हैं।

राइल के उपागम में अनेक प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं-

i. केली का व्यक्तिगत निर्मित उपागम (Personal construct approach);
ii. अलेक्जेंडर और फ्रेंच की मनोगात्यात्मक समस्याओं में सक्रिय हस्तक्षेप में रूचिय
iii. मार्डी हारिडोज द्वारा मन की अवस्थाओं का रेखाचित्र के माध्यम से चित्रणय और
iv. अनेक उपागमों द्वारा सामान्य पुनरावृत्ति की जाने वाली अंतर्वैयक्तिक प्रविधियों की पहचान.

इस उपागम के विकास में एक मुख्य विषय यह था कि सार्वजनिक क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवा के लिए कम से कम समय में उपयोग में लाये जा सकने वाले उपागम को विकसित किया जायेगा।

अन्य अल्प-अवधि वाले उपागम की तरह इसमें भी ‘‘प्रार्थी के लिए’’ या ‘‘प्रार्थी के साथ’’ की तुलना में ‘प्रार्थी द्वारा‘ की निति अधिक उपयुक्त मानी जाती हैं।

संज्ञानात्मक विश्लेषणात्मक उपचार- परामर्शन प्रणाली के तीन चरण होते हैं-

- वर्णन
- हचान/प्रत्यभिज्ञा
- और संशोधन।

इस अवस्था में, जो बहुधा एक ओर से चार सत्रों तक चलती हैं। परामर्शदाता प्रार्थी के इतिहास का वर्तमान समस्याओं के साथसम्बन्ध की दृष्टि से अध्ययन करता हैं। प्रार्थी को परामर्शन के मुख्य बिंदु को समझने में सहायता दी जाती हैं। परामर्शदाता समस्या निरूपण के बाद पुनर्निरूपण पत्र लिखता है जिसमें प्रार्थी आवश्यक संशोधन करता है तथा यह जान पाता है कि परामर्शदाता उसे किस सीमा तक समझ रहा हैं। आपने जीवन की कथा को इस प्रकार प्रस्तुत किये जाने से परामर्शी के अतीत के साथ संपर्क घटाने में सहायता मिलती है तथा अपनी कथा में संशोधन करने की क्रिया में सशक्तिकरण का बोध होता हैं। पत्र में अधिगम सम्बन्धी आवश्यकताओं का भी वर्णन किया जाता हैं। समस्या का वर्णन और अतीत एवं वर्तमान अनुभवों से इसका सम्बन्ध स्पष्ट हो चुकने के पश्चात प्रत्यभिज्ञा चरण का आरम्भ होता हैं। इस चरण में प्रार्थी वर्णन को अर्थपूर्णता प्रदान करने के लिए संघर्ष करता हैं। यह समझने का प्रयत्न करता है कि ‘‘क्या हो रहा है’’, ‘‘क्या चल रहा है’’. व्यक्ति के अवलोकन आत्म को सशक्त किया जाता है जिसके आधार पर घटनाओं के क्षितिज पर विचार करते

हुए यह समझने का प्रयत्न किया जाता है कि (प्रार्थी द्वारा) वह प्रक्रियात्मक प्रतिक्रिया पर किस प्रकार नियंत्रण स्थापित कर सकता हैं।

उक्त प्रत्यक्षण के विकास के पश्चात संशोधन कार्य आरम्भ होता है जहाँ नए विकल्पों का अन्वेषण किया जाता है, प्रक्रिया के बंद चक्रव्यूह को तोडा जाता है तथा नए निर्णय अपनाये जाते हैं।

संज्ञानात्मक विश्छेषणात्मक उपागम में उपचार का संयुक्त रूप में मूल्यांकन किया जाता हैं। सत्रों (प्रायः सोलह) के अंत में चेतन अभिप्राय पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाता हैं। परामर्शदाता अपनी अन्य सहयोगी क्षमताओं स्वप्न विश्लेषण, सृजनात्मक कला, अंतर्वैयक्तिक अन्वेषण और गेस्टाल्ट संपर्क का भी उपयोग कर सकता हैं। इस प्रकार का अवसर मनोपचारक और प्रार्थी की सृजनात्मकता को फलीभूत होने का अवसर प्रदान करता हैं। परामर्शदाता प्रार्थी के साथ किसी प्रकार के कार्य के उद्देश्य को स्पष्ट करने की आवश्यकता आने पर स्पष्टीकरण भी देता हैं।

CAT की प्रक्रिया आत्म-प्रत्यावर्तन प्रतिरूप में देखी जा सकती हैं। यह प्रक्रिया प्राप्त लाभ को बनाये रखने में सहायक होती हैं। व्यक्ति जीवन की संभावनाओं के प्रति खुला दृष्टिकोण अपनाता है तथा निरंतर आत्म-प्रत्यावर्तन करते रहता हैं।

२. **बहुआयामी उपचार (Multimodal Therapy)** लजारस (Arnold Lazarus, 1932) का प्रशिक्षण मनोविश्लेषणात्मक, मनोगत्यात्मक और व्यक्ति केन्द्रित सिद्धांत एवं प्रणाली में हुआ था और 1958 में उन्होंने सर्वप्रथम व्यवहार चिकित्सक और व्यवहार उपचार पदों का एक शैक्षिक पत्र में उपयोग किया। लजारस ने व्यवहार उपचार प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के अनुवर्ती अध्ययन में यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि उनमें समस्या की पुनरावृत्ति अन्य व्यक्तियों जिन्होंने व्यवहार उपचार के साथ संज्ञानात्मक प्रविधियों का भी लाभ प्राप्त किया था, की तुलना में अधिक थी। अतः 1970 के दशक में लजारस संज्ञानात्मक-व्यवहारात्मक प्रविधियों की एक व्यवस्थित विस्तृत श्रृंखला का उपयोग किये जाने के लिए वकालत करने लगे। अपने अनुवर्ती अध्ययनों से वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि परामर्शन से प्राप्त लाभों के अनुरक्षण में कई प्रविधियों के सम्मिलित उपयोग का योगदान किया जाना उपयोगी होता हैं। इस ध्येय से लजारस ने बहुआयामी उपचार उपागम विकसित किया जिसमें मानव व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों की व्यापक रूप में पहचान करके उपचार पर बल दिया जाता हैं।

प्रविधियों एवं हस्तक्षेपों का उपयोग परामर्शदाता और प्रार्थी की विशेषताओं एवं दक्षताओं, परामर्शन सम्बन्ध और प्राविधि की विशिष्टता के आधार पर किया जाता हैं। अनेक संज्ञानात्मक, व्यवहारात्मक प्रविधियों के अतिरिक्त अन्य उपागमों, जैसे गेस्टाल्ट उपागम की प्रविधियों (रिक्त स्थान विधि) का भी उपयोग किया जाता हैं। एक 15 पृष्ठीय बहुआयामी जीवन वृतांत अनुसूची (Multimodel life history inverntory-MLHI) तैयार की जाती है जिसमें आवश्यक सूचनाएं प्रार्थी द्वारा सत्रों के मध्य में घर पर भर ली जाती हैं। इसका एक दूसरा भाग होता है जो उस समय उपयोग में लिया जाता है जब

प्रयुक्त प्रविधि विफल हो जाती हैं। लजारस (1989) ने 1 से 7 बिंदु मापन के आधार पर एक संरचनात्मक रूपरेखा भी तैयार करने का सुझाव दिया जिसमें प्रार्थी सैट आयामों पर अपना आत्तमनिष्ठ मूल्यांकन प्रस्तुत करता हैं। स्टेफेन पामर (1996, 2000) के अनुरूप प्रयुक्त प्रविधियों की चित्रण तालिका निम्नवत प्रस्तुत हैं।

तालिका: बहुआयामी उपचार में बहुधा प्रयुक्त होने वाली तकनीकें

आयाम **(Modality**	**तकनीकें एवं हस्तक्षेप** **(Techniques and interventions)**
व्यवहार **(Behaviour)**	व्यवहार पूर्वाभ्यास (Behaviour rehearsal) रिक्त कुर्सी (Empty Chair) प्रदर्शन कार्यक्रम (Exposure Programme) स्थिर भूमिका चिकित्सा (Fixed role therepy) प्रतिरूपण (Modelling) विरोधाभासी आशय (Paradoxial intention) मनो-नाटक (Psychodrama) प्रबलन कार्यक्रम (Reinforcement Programme) प्रतिक्रिया निरोधन/मूल्य (Response prevention/cost) जोखिम अनुभव (Risk training experience) आत्म निरीक्षण एवं आलेख (Self monitoring and recording)
भाव **(Affect)**	उद्दीपक नियंत्रण (Stimulus controle) शर्म-आक्रमण (Shame attacking) क्रोध प्रदर्शन/प्रबंधन (Anger expression/management) चिंता प्रबंधन (Anxiety management अनुभूति पहचान (Feeling identification)
संवेदना **(Sensation)**	जैव पुनर्निविशन (Bio-feed back) सम्मोहन (Hypnosis) ध्यान (Meditation) विश्रांति प्रशिक्षण (Relaxation Training)

	संवेदी केन्द्रण प्रशिक्षण (Sensate focus training) देहली प्रशिक्षण (Threshold training)
बिम्ब **(Imagery)**	भविष्य विरोधी आघात बिम्ब (Anti future shock imagery) सहचरित बिम्ब (Associated imagery) विकर्षणात्मक बिम्ब (Aversive imagery) सामंजस्यीकरण बिम्ब (Coping imagery) काल्पनिक प्रदर्शन (Imaginal exposure) विधेयात्मक बिम्ब (Positive imagery) तार्किक सांवेगिक बिम्ब (Rational motive imagery) काल प्रक्षेपण बिम्ब (Time Projection imagery)
सज्ञान **(Cognition)**	बिबलियोथेरेपी (Biblio-therapy) त्रुटिपूर्ण अनुमानों को चुनौती (Challenging faulty inferences) संज्ञानात्मक रिहेर्सल (Cognitive rehearsal) सामंजस्यकारी कथन (Coping statements) मिथ्या धारणाओं में सुधार (Corrective misconceptions) विवादास्पद अतार्किक विश्वास (Disputing irrational beliefs) केन्द्रण (Focusing) विधेयात्मक आत्म कथन (Positive self statements) समस्या समाधान प्रशिक्षण (Problem solving training) तार्किक मतान्तरण (Rational proselytization) आत्मस्वीकृति प्रशिक्षण (Self acceptance training) चिंतन विराम (Thought stopping)
अन्तःवैयक्तिक **(Interpersonal)**	आग्रह प्रशिक्षण (Assertion training) संचार प्रशिक्षण (Communication training) अनुबंध (Contracting) स्थिर भूमिका चिकित्सा (Fixed role therapy) मित्रता/आत्मीयता प्रशिक्षण (Friendship/intimacy training) श्रेणीकृत यौनिक उपागम Graded sexual approaches) विरोधाभासी आशय (Paradoxial intentions)

	भूमिका वहन (Role play) सामाजिक कौशल प्रशिक्षण (Social skill training)
औषधि/जैविक **((Drug/Biology)**	मदिरा न्यूनीकरण कार्यक्रम (Alchohol reduction programme) जीवन शैली परिवर्तन, उदा0 व्यायाम, पौष्टिक भोजन आदि (Life style changes, exercise, nutrition etc.) चिकित्सक या अन्य विशेषज्ञ को संदर्भित (Reffered to physicians or other specialists) धूम्रपान विराम कार्यक्रम (Stop smoking programme) भार में कमी तथा अनुरक्षण कार्यक्रम (Weight reduction and maintenance programme)

दक्ष-सहयोगी मॉडल (Skilled Helper Model)

दक्ष-सहयोगी मॉडल का विकास गेरार्ड ईगन (**Gerard Egan**, 1975) ने किया है से सतत करते आ रहे हैं। आरम्भ में गेरार्ड ने व्यक्तिक एवं समूह कार्य की दशाओं से सहयोगी (परामर्शदाता) के लिए संचारण/सम्प्रेषण दक्षताओं का वर्णन किया। गेरार्ड का यह विचार था कि ‘‘जीवन की समस्याओं की व्याख्या मात्र (जैसा कि उनके उपागमों में होता है) एक अपर्याप्त प्रयास हैं। इनका यह विश्वास था कि सामाजिक दशाओं एवं प्रणालियों के प्रभावों एवं अवसरों का समुचित प्रबंधन सहायता की प्रक्रिया के माध्यम से किया जा सकता हैं। दक्ष-सहयोगी मॉडल सहायता देने वाली तीन अवस्थाओं वाली प्रक्रिया हैं। इन तीन अवस्थाओं को आरम्भ में अन्वेषण, बोध और कार्यवाही कहा गया। गेरार्ड (2001) ने तीसरी अवस्था को ‘‘वहाँ पहुँचना’’ (Getting there) कहा हैं।

दक्ष-सहयोगी मॉडल समन्वयात्मक एवं पारसैद्धान्तिक हैं (**Connor**, 2000) यह मॉडल राजर्स के व्यक्तिगत केन्द्रित उपागम के तत्वों का उपयोग करता है किन्तु इसके मुख्य बल संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक है जिसमें बैंडूरा, बेक, इल्लिस, सेलिगमैन और स्ट्रोंग का प्रभाव परिलक्षित होता हैं। ईगन ने इस मॉडल को 'समस्या प्रबंधन मॉडल' या सहायता के लिए प्रारूप' के रूप में प्रस्तुत किया ।

ईगन (1990) ने प्रार्थी को चुनौती देने पर अधिक बल दिया और माना कि ऐसा करके यह अपेक्षा की जा सकती है कि प्रार्थी कार्यवाही के लिए अधिक जिम्मेदारी स्वीकार करेगा ईगन ने यह भी स्पष्ट किया कि यह मॉडल सहायता का सिद्धांत प्रस्तुत करता है न कि सहायता की रूपरेखा। प्रकाशन के पांचवें संस्करण (1994) में ईगन ने स्वीकार किया है कि यह मॉडल व्यवस्थित विभिन्न -दर्शन ग्राही हैं। दक्ष-सहयोगी मॉडल का छठां

संस्करण 1998 और सातवां संस्करण 2001 में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत विवरण इस मॉडल की मेरी कोनर्स (2000) द्वारा की गयी व्यवस्था के अनुरूप हैं।

प्रार्थी में परिवर्तन उत्पन्न हो उसके लिए परामर्शदाता में कुछ विशेषताएं होनी चाहिए जैसे- निष्ठा (**genuineness**), सम्मान (**respect**), एवं परानुभूति (**empathy**) । कान्नर (2000) ने प्रभावशाली कार्यकारी सम्बन्ध के विकास की आवश्यकता, जिसमें सहयोग एवं चुनौती की उपयुक्त मात्रा हो, को महत्वपूर्ण बताया हैं। सहायता एवं परिवर्तन की तीनों अवस्थाओं में संबंधों की जीवन्तता आवश्यक बताई गयी हैं।

- **प्रथम अवस्था** में प्रार्थी अपना वृतांत प्रस्तुत कर सके उसके लिए उसे सहयोग की आवश्यकता होती हैं। ध्यान देना, सुनना, सार संक्षेप करते रहना, अनुभूतियों का प्रत्यावर्तन, छानबीन और स्पष्टीकरण की माँग जैसी दक्षताओं की आवश्यकता होती हैं। अंध-क्षेत्रों की पहचान के लिए परानुभूति चुनौती द्वारा ही समस्या की उपयुक्त व्याख्या या संसाधनों एवं अवसरों के अनुपयोग या अल्प-उपयोग की दशा जैसे प्रार्थी के अंध-क्षेत्रों की पहचान संभव हो पाती हैं। प्रथम अवस्था के लिए परामर्शदाता (सहायक) की आवश्यक दक्षताओं में विषयों पर केन्द्रण, प्राथमिकताओं के निर्धारण एवं उत्तोलन का अन्वेषण की दक्षता की गणना की जाती हैं।

  परिदृश्य की रूपरेखा विकसित करने के लिए सृजन एवं कल्पना की क्षमता होनी चाहिए, परामर्शदाता अनेक प्रकार से प्रार्थी के पार्श्वचिंतन को प्रोत्साहित कर सकता हैं। इसके लिए ड्राइंग, निबंध, चित्रांकन या मस्तिष्क उद्वेलन की क्रियाओं को प्रयुक्त किया जा सकता हैं। इन सबके पीछे यह प्रयास निहित होता है कि किसी प्रकार प्रार्थी के लिए संभावनाओं का द्वार खुले, वह अकल्पनीय के विषय में कल्पना करने लगे और वास्तविक संभावनाओं का अनुकरण होने लगे। परामर्शदाता के अन्दर यह दक्षता होनी चाहिए कि वह प्रार्थी की महत्वपूर्ण इच्छाओं को प्रोत्साहित करे तथा बाधित करने वाले कर्तव्यों को दूर करे।

- इस मॉडल के **द्वितीय चरण** की पूर्ति हेतु लक्ष्य निर्धारण एवं लक्ष्य के प्रति समर्पण के परीक्षण की दक्षता उपयोगी होती हैं। इस दृष्टि से **SMART** (**Specific Measurable Achievable**, **Realistic, Time frame**) को अच्छी रणनीति माना जाता हैं। लाभ हानि मूल्यांकन विधि द्वारा उपयुक्त लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता हैं।

- **तृतीय अवस्था** के लक्ष्य को प्राप्त कर सकने में सहायक सिद्ध हो पाने के लिए परामर्शदाता/दक्ष सहायक में प्रार्थी के मस्तिष्क को उद्वेलित कर उसके लिए सर्वोपयुक्त योजना का चयन कर पाने की दक्षता होनी चाहिए, इस अवस्था में शक्ति क्षेत्र विश्लेषण जैसी विधियों का उपयोग किया जाता हैं। इस प्रकार के विश्लेषण द्वारा यह निर्धारित करके कि लक्ष्य प्राप्ति में कौन कारक सकारात्मक सहायक या नकारात्मकध् बाधक हैं। सकारात्मक घटकों को मजबूत करने और नकारात्मक घटकों को क्षीण करने

का उपाय किया जा सकता हैं। चुनौतियों की पूर्व जानकारी से व्यक्ति को पूर्व तैयारी का अवसर प्राप्त होता हैं। अतः परामर्शदाता चुनौतीपूर्ण मार्ग के विश्लेषण जैसी विधियों का उपयोग करता हैं।

परामर्शदाता के लिए मूल्यांकन दक्षता की पूरी प्रक्रिया में आवश्यकता होती हैं। परामर्शदाता में सदैव स्वतः स्फूर्ति शैली में प्रार्थी के साथ होने की दक्षता होनी चाहिए, उसमें यह क्षमता होनी चाहिए कि सहायता प्रारूप का लचीलेपन के साथ उपयोग किया जा सकेद्य मूल्यांकन की क्षमता सर्वाधिक आवश्यक दक्षता होती है जिसके आधार पर वह प्रार्थी में हो रहे परिवर्तन का मूल्यांकन एवं अनुश्रवण करता हैं। इन दक्षताओं के साथ परामर्शदाता इस मॉडल का बुद्धिमत्ता एवं निष्ठा पूर्वक उपयोग करता है, यंत्रवत ढंग से नहीं।

पार-सैद्धांतिक उपागम (Trans-Theoretical Approach)

प्रोशास्का एवं डिक्लिमेंट (**Prochaska and Diclemente**) पार सैद्धांतिक उपागम को विकसित करने के लिए 1970 एवं 1980 के दशकों में अमेरिका में सामान्यतः आवश्यकता को महत्वपूर्ण कारण मानते हैं जिसके अंतर्गत प्रचलित मनोपचार प्रणालियों को संकुचित एवं अनिवार्य बताया गया । प्रायः सभी उपागम अपनी प्रणाली को उपयुक्त बताते हुए एक सैद्धांतिक ढाँचा भी विकसित कर लेते हैं। प्रोशास्का ने 1977 में विविध उपागमों के सामान्य तत्वों का सर्वेक्षण आरम्भ किया और 1984 में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी उपागमों में परिवर्तन के लिए मूलतः दस पृथक प्रक्रियाओं का प्रार्थी में परिवर्तन के लिए उपयोग करते हैं। बाद में प्रोशास्का एवं डिक्लिमेंट (1986, 1992) ने इस आधार का विस्तार, विकास एवं शोधकार्य संपन करके पार-सैद्धांतिक उपागम प्रस्तुत किया। यह उपागम प्रार्थी में परिवर्तन के लिए व्यावहारिकता पर बल देता हैं।

यह उपागम परिवर्तन की प्रक्रिया को मनोपचारी ढंग से, प्रकट हुई समस्याओं के विविध स्तरों के साथ समन्वित करता हैं। इसमें परिवर्तन की (**i**) प्रक्रियाओं (**process**), (**ii**) अवस्थाओं (**stages**) और (**ii**) स्तरों का वर्णन किया गया हैं।

परिवर्तन की दस प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है-

i. चेतनशीलता का उत्थान- अपने एवं समस्याओं के बारे में सूचना विस्तार,
ii. आत्म-मुक्ति- चयन, परिवर्तन के लिए विश्वास और समर्पण,
iii. सामाजिक-मुक्ति- समाज में व्यवहार के लिए विकल्पों का बोध एवं विकल्प-बुद्धि,
iv. प्रति अनुबंधन- समस्या व्यवहार के विकल्पं प्रस्तुत करना,
v. उद्दीपक नियंत्रण- समस्या व्यवहार बढ़ाने वाले उद्दीपकों का परिहार एवं प्रतिरोध,

vi. आत्म-पुनर्मूल्यांकन- समस्या के सन्दर्भ में अपने विचार और अनुभूति का पुनर्मूल्यांकन,

vii. परिवेशीय पुनर्मूल्यांकन- भौतिक परिवेश पर अपनी समस्या के प्रभाव का मूल्यांकन ,

viii. पुनर्बलन प्रबन्धन- परिवर्तन के लिए स्वयं को पुरस्कृत करना या पुरस्कार पाना,

ix. नाटकीय अभिव्यक्ति- समस्या और समाधान सम्बन्धी अनुभूतियों का अनुभव करना/अभिव्यक्त करना,

x. सहायता सम्बन्ध- सहायता करने वालों के प्रति खुलापन रखना एवं विश्वास करना।

परिवर्तन की चार अवस्थाओं का वर्णन किया गया है-

i. विचार पूर्ण अवस्था- समस्या का बोध नहीं,

ii. विचार अवस्था- समस्या का बोध होना,

iii. कार्य अवस्था- परिवर्तन के लिए निश्चयन, परिवर्तन के लिए कार्य करना,

iv. अनुरक्षण अवस्था- परिवर्तन को सबल करना तथा नयी दक्षताओं का विकास।

परिवर्तन के लिए पाँच स्तरों का भी वर्णन किया गया है-

i. लक्षण/पारिस्थितिक- समस्याओं की प्रस्तुत विशेषताएं,

ii. कुसमयोजनात्मक संज्ञान अनुपयुक्त विचार एवं विश्वास,

iii. वर्त्तमान अंतर्वैयक्तिक द्वन्द- सम्बन्ध समस्याएं,

iv. परिवाए/ व्यवस्था द्वन्द- तात्कालिक व्यवस्था की समस्याएँ,

v. आतंरिक द्वन्द- स्व के अन्दर की समस्याएँ।

प्रायः प्रथम स्तर की समस्या के लिए व्यावहारिक हस्तक्षेप, कुसमयोजनात्मक संज्ञान परिवर्तन के लिए संज्ञानात्मक प्रविधियाँ, तीसरे और चैथे (अंतर्वैयक्तिक/पारिवारिक द्वंदों) स्तर के लिए व्यवस्थागत हस्तक्षेप तथा व्यक्ति के स्व के अन्दर की समस्याओं के लिए मनोचिकित्सा की निति अपनाई जाती हैं।

विभिन्न अवस्थाओं में से पूर्व विचार अवस्था के लिए शिक्षा, सेल्फ मॉनिटरिंग, अन्वेषण, तादात्मीकरण की विधियां प्रयुक्त की जाती हैं। कार्य अवस्था के लिए संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक हस्तक्षेप विधियाँ प्रयुक्त करके आत्म-प्रभाव का संवर्धन किया जाता हैं। अनुरक्षण अवस्था के लिए वैकल्पिक पुनर्बलन प्रणाली, नयी जीवन

शैली, प्रति अनुबंधन, उद्दीपक नियंत्रण और आतंरिक द्वंदों के समाधान की प्रविधियों/विधियों को प्रयुक्त किया जाता हैं।

6.9 एच. आई. वी/एड्स परामर्श

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के युग में मानव जीवन के लिए दीर्घकाल तक टी0 बी0, मलेरिया कैंसर तीन चुनौतियाँ मानी गयी जिनसे बचाव के कारगर उपाय विकसित करने के क्रम में अभी भी प्रयास जारी हैं। तब तक एच आई वी/एड्स के रूप में एक नयी चुनौती प्रकट हो गयी जिसके विषय में आरम्भ में यह माना गया कि किसी व्यक्ति को एड्स होना उसके लिए मृत्यु दण्ड के आदेश पर हस्ताक्षर कर दिए जाने जैसा हैं। हालाँकि आज स्थिति इतनी विकराल नहीं है किन्तु समस्या अभी भी गंभीर बनी हुई हैं।

एड्स (**AIDS**: **Acquired Immune Deficieny Syndrome**) रोग प्रतिरोध की हमारी स्वाभाविक क्षमता को निर्बल बनाने वाला अर्जित रोग संलक्षण हैं। एड्स के फलस्वरूप जब रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो जाती है तब हम रोगों को तीव्रता से ग्रहण करने लग जाते हैं। एड्स का संक्रमण **HIV** (**Human Immuno-deficiency Virus**) श्रेणी के विषाणु के मानव शरीर में प्रवेश करने से होता हैं। एच आई वी का संक्रमण विषमलिंगी या समलिंगी यौनिक सम्बन्ध स्थापित करने अथवा एच आई वी संक्रमित व्यक्ति के रक्त का स्वस्थ व्यक्ति के रक्त में संचार से होता हैं।

एच आई वी/एड्स का उपचार अभी भी जन-सामान्य के लिए सहज व सुगम नहीं हो पाया हैं। एच आई वी/एड्स से बचाव के लिए आकर्षक एवं सरल उपाय का अभाव, उपचार के लिए औषधियों का अभाव, इनके अतिरिक्त इस रोग के साथ जुड़े लांछना तथा जीव के लिए गंभीर खतरों के कारण पीड़ित व्यक्ति, उसके परिवार, सम्बन्धियों एवं मित्रों के समक्ष मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक स्तरों पर अनेक गंभीर संकट उत्पन्न होते हैं अतः इन सभी लोगों के लिए विविध स्तरों पर परामर्शन आवश्यक हो जाता हैं।

एच आई वी/एड्स संक्रमित व्यक्ति को शारीरिक चुनौतियों के अतिरिक्त जीवन के सभी आयामों पर संकट का सामना करना पड़ता हैं। कुछ प्रमुख चुनौतियों को निम्नवत प्रस्तुत किया गया है -

- व्यक्ति समाज एवं परिवार द्वारा बहिष्कृत कर दिया जाता है, उसे सामाजिक लांछन का सामना करना पढ़ता हैं।
- व्यक्ति अपनी दशा के लिए अत्यधिक आत्मग्लानि, पापबोध से पीड़ित देखा जाता हैं।
- प्रायः पीड़ित व्यक्ति को नौकरी से अलग कर दिया जाता है और इस प्रकार उसे आर्थिक क्षति उठानी पड़ती हैं।

- पीड़ित व्यक्ति के समक्ष नयी समायोजनात्मक चुनौतियाँ प्रकट होती हैं।
- व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थ्य के विकास में इच्छा शक्ति की भूमिका होती हैं। एड्स से पीड़ित व्यक्ति में प्रायः जीवन के लिए इच्छा शक्ति का आभाव पाया जाता हैं।

6.10 एच आई वी/एड्स में मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप

एच. आई. वी./एड्स से प्रभावित व्यक्ति संक्रमण की पहचान होने के समय से ही अनेक समस्याओं का सामना कराता हैं। प्रथम उसे यह लगता है कि उसके मृत्यु दण्ड के आदेश की पुष्टि हो चुकी हैं। द्वितीय, वह सामाजिक/नैतिक स्तर पर लांछित किया जाता हैं। तृतीय, परिवार, मित्रों, सहकर्मियों आदि द्वारा सामाजिक स्तर पर बहिष्कृत कर दिया जाता हैं। यहाँ तक की उस व्यक्ति के उपचार से सरोकार रखने वाले लोग भी उपेक्षा करते हैं। चतुर्थ, उपचार की ऊँची कीमत के कारण उसके समक्ष आर्थिक संकट प्रकट होता हैं। उक्त सभी के संयुक्त प्रभाव का सामना कर पाने के लिए पीड़ित व्यक्ति को परामर्शन सहायता की आवश्यकता होती हैं। व्यक्ति की पहली आवश्यकता ऐसे स्वैच्छिक संगठनों के विषय में जानकारी प्राप्त करना होता है जो उसे विभिन्न स्तरों पर सहायता प्रदान कर सकते हैं । वस्तुतः एच आई वी/एड्स की जाँच होने से पहले ही मनोवैज्ञानिक परामर्शन की आवश्यकता समुत्पन्न हो जाती है क्योंकि पहले तो व्यक्ति को एच आई बी/एड्स की जाँच सम्बन्धी विचार/प्रस्ताव के साथ ही समायोजित होना पड़ता है तथा परीक्षणोंपरांत आने वाली किसी अशुभ सूचना का सामना कर पाने के लिए भी तैयार होना पड़ता हैं। परीक्षण से पूर्व सभी प्रार्थियों को मनोवैज्ञानिक परामर्शन एक नियमित प्रक्रिया के अधीन आवश्यक रूप से उपलब्ध कराया जाना चाहिएद्य (**Bernard Ratigan**, 2000). ऐसा परीक्षण कराने के विचार मात्र से अधिकतर व्यक्तियों में संवेगिक संकट प्रकट हो जाता हैं। ऐसे व्यक्ति भी एच आई वी/एड्स के भय से ग्रसित पाए जाते हैं जोकि संक्रमण मुक्त होते हैं। ऐसा भय मनोविक्षिप्तता या मनोग्रस्तता बाध्यता का परिणाम भी हो सकता हैं। ऐसे प्रार्थी के लिए संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक उपचार पद्धति उपयुक्त मानी जाती हैं। एच. आई. वी./एड्स से पीड़ित व्यक्तियों के समक्ष जब अलग-थलग कर दिए जाने का संकट आता है तब परामर्शदाता का कर्त्तव्य उपलब्ध सेवाओं का सदुपयोग सहज बनाना होता हैं।

एच आई वी/एड्स के उपचार के लिए अनेक ऐसी कारगर औषधियों का अब विकास हो चुका है जो जीवन की संभावना को प्रबल करते हैं। किन्तु ऐसा पाया गया है कि जिन व्यक्तियों में स्वयं को मनोवैज्ञानिक स्तर पर संगठित करने की सामर्थ्य होती है वे उपचार अधिक अच्छे ढंग से स्वीकार करते हैं। परामर्शन सहायता के फलस्वरूप व्यक्ति लम्बी आयु से सम्बंधित चुनौतियों का सामना कर सकता हैं।

एच. आई. बी./एड्स परामर्शन/उपचार के क्षेत्र में मानवतावादी, संज्ञानात्मक अस्तित्ववादी एवं सर्वाग उपागम अधिक प्रयुक्त होता हैं। प्रार्थी को जिस प्रकार परिवार/प्रणालीगत स्तर पर सहायता की आवश्यकता होती है उसे देखते हुए सर्वांग उपागम की उपयोगिता महत्वपूर्ण हो सकती हैं। चूँकि समस्या का मौलिक समाधान

विशेषज्ञ चिकित्सकों द्वारा किया जाना होता है अतः परामर्शदाता/मनोपचारक को कार्यदल के सक्रिय सदस्य के रूप में कार्य करने की आवश्यकता होती हैं।

एच. आई. वी. संक्रमित व्यक्ति परीक्षणोंपरांत सर्वप्रथम परिणाम के बारे में अविश्वास की प्रतिक्रिया से आरम्भ करता है किन्तु तत्पश्चात यह पूरी तरह टूट जाने की अवस्था में पहुँचता हैं। परामर्शन कार्य द्वारा उसे अपनी दशा का सृजनात्मक रूप में सामना करते हुए लम्बी आयु तक सफलता पूर्वक जीवन यापन करने की दशा में सहायता दी जा सकती हैं। व्यक्ति के समक्ष जीवन के संकट के फलस्वरूप खतरे एवं चुनौतियाँ दोनों ही प्रकट होती हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए निराशा, असहायता जैसी नकारात्मक अनुभूतियाँ उपयुक्त नहीं होती हैं। सामाजिक स्तर पर क्या उचित और अनुचित है इस विषय का पुनर्मूल्यांकन किया जा सकता हैं। व्यक्ति के लिए आत्मग्लानि एवं लज्जा की अनुभूति से बाहर आने की आवश्यकता होती हैं। मनोपचार/परामर्शन के अंतर्गत इस विषय में कार्य किया जा सकता हैं। प्रार्थी के लिए समग्र प्रयास में गोपनीयता अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं।

कुछ प्रार्थी द्वारा आत्महत्या, ऐच्छिक मृत्यु की माँग जैसे विचार प्रस्तुत किया जा सकता है, वे अपनी वसीयत तैयार कराना चाहते हैं। ऐसे सन्दर्भ में परामर्शन कार्य का उद्देश्य लम्बी आयु के लिए संघर्ष हेतु प्रार्थी को तैयार करना होना चाहिए क्योंकि जीवन समापन एवं जीवनोपरांत विषयों पर विचार-विमर्श से उपचार एवं समायोजन कार्य प्रभावित होता हैं।

6.11 व्यसन/चिंता परामर्श

व्यसन या औषधि व्यसन वर्त्तमान समाज के लिए, विशेषकर हमारी युवा पीढ़ी के लिए एक गंभीर चुनौती हैं। यह चुनौती प्राचीनकाल से अस्तित्व में रही है किन्तु अब औषधि व्यसन की वृत्ति व्यापक होकर भयावह रूप धारण कर चुकी है, अतः अधिक चिंतनीय हैं। इस समस्या के विवरण में औषधि व्यसन, औषधि निर्भरता, औषधि या पदार्थ कुप्रयोग पयोग जैसे विविध शीर्षक प्रकट होते हैं।

औषधि साधारणतः ऐसे पदार्थ के रूप में परिभाषित की जाती है जिसका सेवन पोषण के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से किया जाता है तथा इसकी विवेचना उस दशा में की जाती है जब इसका अधिक-अनियंत्रित सेवन हमें व्यसन की ओर ले जाता है तथा हमारी शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक कुशलता में पर्याप्त कमी आती हैं। (Phil and Peterson, 1992). इस प्रकार औषधि व्यसन साधारणतः व्यक्ति द्वारा चिंता, तनाव या पीड़ा के प्रतिरोध के लिए अथवा आनंदानुभूति के लिए बिना किसी उपचारात्मक उपयोग के अथवा चिकित्सकीय परामर्श के बिना स्वयं के स्तर पर किया जाने वाला उपयोग हैं। औषधि उपयोग से आरम्भ हुआ व्यवहार औषधि दुरूपयोग में परिवर्तित हो जाता है एवं लम्बे समय तक दुरूपयोग होने पर दुरूपयोग में लायी जा रही औषधि के लिए निर्भरता उत्पन हो जाती है, व्यक्ति में उस औषधि की लत लग जाती है, व्यक्ति औषधि व्यसनी बन जाता हैं।

औषधि व्यसन के कारण

औषधि व्यसन के कारणों को प्रस्तुत करने वाले मॉडलों को मुख्यतः तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है-

- **बायोपैथोलॉजिकल जेनेटिक मॉडल**: बायोपैथोलॉजिकल जेनेटिक मॉडल के अनुसार जेनेटिक विकृति सम्बन्धी कारणों से औषधि व्यसन की संभावना बढ़ जाती हैं। इस मॉडल के दूसरे रूप में औषधि व्यसन का कारण दैहिक कारकों में निहित बताया गया हैं। गूड़विन एवं उसके सहयोगियों ने पाया कि जैविक पिता में मद्यपान की आदत होने पर बच्चों में उन्हीं परिवारों द्वारा गोंद लिए गए बच्चों की तुलना में मद्यपान की संभावना चार गुना अधिक थी। दैहिक सहचरों के आधार पर औषधि व्यसन की मात्र में वृद्धि की व्याख्या संभव हो पायी है किन्तु यह व्याख्या करना संभव नहीं हो पाया है कि आखिरकार कोई व्यक्ति औषधि व्यसन क्यों करता हैं।
- **साइकोपैथोलॉजिकल तथा पर्सनालिटी मॉडल**: साइकोपैथोलॉजिकल तथा पर्सनालिटी मॉडल में व्यक्तित्व की विशेषताओं अर्थात व्यक्तित्व शीलगुणों को औषधि व्यसन की प्रवृत्ति के लिए उत्तरदायी बताया गया हैं। इसके अनुसार व्यक्तित्व में निहित व्यक्तित्व शीलगुण या मनोविकृति व्यक्ति में ऐसे संवेग विकसित करते हैं जिनके प्रभाव में (जिससे मुक्त होने के लिए) व्यक्ति औषधियों का दुरुपयोग करता हैं। इस सिद्धांत के अनुसार औषधि व्यसन व्यक्ति के व्यक्तित्व में निहित मनोवैज्ञानिक विकृति का एक लक्षण मात्र हैं। इस प्रकार इस मॉडल के अनुसार औषधि व्यसन की समस्या का समाधान करने के लिए अन्तर्निहित मनोवैज्ञानिक विकृति को दूर किया जाना चाहिए
- **सोशल तथा बिहेवियरल मॉडल**: सोशल तथा बिहेवियरल मॉडल के अनुसार औषधि व्यसन सामाजिक परिवेश के प्रभाव में सीखा गया व्यवहार हैं। हमारे समुदाय/समूह द्वारा अनेक प्रकार के व्यवहारों का प्रबलन (**Reinforcement**) अनेक व्यवहारों के सीखने का आधार होता हैं। मद्यपान एवं औषधि व्यसन ऐसे ही समाज अधिगमित व्यवहार हैं। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक, व्यावसायिक समारोहों में औषधि व्यसन का बढ़ता प्रचलन इसी व्याख्या के अनुरूप घटित हो रही घटना हैं।

यदि उपर्युक्त सैद्धांतिक प्रारूपोंध् मॉडल्स में निहित चरों को सूचीबद्ध किया जाय तो शोध अध्ययनों में प्रकट होने वाले औषधि व्यसन के प्रमुख निर्धारक अधोवर्णित श्रेणी के हो सकते हैं-

i. **औषधि की सहज उपलब्धता-** औषधियों के सहज उपलब्धता का कारण आर्थिक लाभ, अपराध जगत का लाभय किसी व्यक्ति, समूह या समुदाय को पथभ्रष्ट करने की राजनीती में निहित हो सकता है किन्तु निश्चय ही सहज उपलब्धता औषधि व्यसन को बढ़ावा देती हैं।

ii. **औषधि सेवन का धर्मध्पंथ की मान्यता के अनुरूप होना-** कतिपय धार्मिक/पंथिक समूहों के लिए गाँजा, चरस, भाँग, पान, मद्यपान का उपयोग उनके अनुष्ठान का अंग होता है अथवा सदस्यों के द्वारा उन पदार्थों के सेबन को स्वीकृति मिली होती हैं। इस प्रकार की धार्मिक स्वीकार्यता औषधि सेवन को प्रोत्साहित करती हैं।

iii. **प्रतिरूप अधिगम (Model learning)**- हमारे युवाओं पर प्रमुख सामाजिक प्रतिरूपों (नेता, अभिनेता, मॉडल, ऐतिहासिक पात्र) का गहरा प्रभाव पड़ता हैं। बच्चे एवं युवक मॉडल के व्यवहार का अनुकरण की प्रणाली द्वारा अधिगम करते हैं। यदि बच्चों/युवकों को वास्तविक जीवन संपर्क द्वारा अथवा चलचित्र के माध्यम से मॉडल को औषधि सेवन करते हुए देखा जाता है तो उनके अन्दर ऐसे व्यवहार कि सम्भावना प्रबल हो जाती हैं।

iv. **समूह का दबाव (Peer Pressure)**- किशोरावस्था में हम अपने मित्रों को अन्य की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हैं। यदि संपर्क में रह रहे मित्रों में औषधि व्यसन का प्रचलन है तो उनके प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दबाव में व्यक्ति औषधि दुरूपयोग आरम्भ कर देता हैं।

v. **कुंठा एवं द्वन्द-** व्यक्तित्व से सम्बंधित चरों में कुंठा एवं द्वन्द तथा इनके कारन उत्पन्न चिंता एवं तनाव ऐसे प्रमुख मनोवैज्ञानिक चर हैं जिनकी अधिकता होने पर व्यक्ति के लिए औषधि व्यसन की दिशा में अग्रसर होने की प्रायिकता बढ़ जाती हैं। जब कोई व्यक्ति अपने जीवन की समस्याओं का प्रत्यक्ष समाधान नहीं कर पाता है तब उन समस्याओं के कारण उत्पन्न हो रहे नकारात्मक संवेगों से बचने के लिए व्यक्ति औषधि सेवन की दिशा में अग्रसर हो जाता हैं।

vi. **उत्तेजना का अन्वेषण- जुकरमैन (Zuckerman, 1979, 1983, 1999)** ने व्यक्ति में उत्तेजना अन्वेषण आयाम का वर्णन किया हैं। कुछ लोग इस प्रवृत्ति के कारण अत्यधिक उत्तेजित करने वाले खेल, करतब या ऐसी ही अन्य गतिविधियों में सम्मिलित होते पाए जाते हैं। ऐसे ही एक अन्य शोध (**Frank H. Farley**, 1990) ने मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणा का टाइप-टी सिद्धांत प्रस्तुत किया जिसमें टी का अर्थ रोमांच अन्वेषण हैं। इस प्रकार की विशेषताओं का गहरा सम्बन्ध औषधि व्यसन से हैं ।

vii. कल्पनालोककीविचरणशीलता- कुछ लोग वास्तविक जीवन से दूर अवास्तविकता से सम्बंधित संसार का अन्वेषण करना चाहते हैं। इस प्रयत्न में व्यक्ति हैलुसिनोजेन के सेवन की ओर अग्रसर होता हैं।

viii. विद्रोह का स्तर- कुछ व्यक्ति व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उनके द्वारा वर्जित पदार्थों के सेवन की दिशा में अग्रसर होते हैं।

ix. दुष्प्रभाव के विषय में अज्ञानता- कुछ बच्चे/युवक औसधियों के कुषप्रभाव को भली प्रकार नहीं जानते हैं और अज्ञानतावश औषधियों का उपयोग आरम्भ करते हैं जो दुरूपयोग और व्यसन में परिवर्तित हो जाता हैं।

x. दर्द निवारक के रूप में दुरुपयोग- कुछ लोग अपनी शारीरिक थकान की अनुभूति को दूर करने के लिए औषधियों के उपयोग/दरुपयोग की आदत विकसित कर लेते हैं।

xi. पार्थक्य/बिलगाव- पोप एवं अन्य (1990) ने अमेरिकियों समाज के कॉलेज विद्यार्थियों में औषधि व्यसन का अध्ययन किया. इस अध्ययन में यह प्रकट हुआ कि पार्थक्य के आधार पर 1969 में औषधि सेवन करने वालों को औषधि सेवन नहीं करने वालों से अलग किया जा सका.

औषधि व्यसन के बचाव के उपाय-

औषधि व्यसन से बचाव के उपाय निम्नवत प्रस्तुत हैं-

- औषधि व्यसन का आरम्भ औषधि उपयोग से होता है और परिहार या बचाव के लिए औषधि उपयोग की प्रक्रिया आरम्भ होने के लिए जिम्मेदार कारकों के प्रभाव को नियंत्रित अथवा सिमित करना होगा। किशोरों एवं नवयुवकों को औषधि के अवैध सेवन के लिये निर्धारित दण्ड एवं शारीरिक कुप्रभाव के विषय में शिक्षित किये जाने की आवश्यकता होती हैं। जब बच्चे सांवेगिक असुरक्षा की अवधि में हों तब उन्हें समुचित सां वेगिक संरक्षण प्राप्त होना चाहिए।
- औषधि व्यसन से बचाव के लिए कुछ सकारात्मक प्रयास भी महत्वपूर्ण हो सकते हैं। पार्थक्य (**Alienation**) औषधि व्यसन का कारण बन जाता हैं। पार्थक्य का विपरीत घटक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शामिल होना होता हैं। अतः किन्हीं जीवन क्षेत्रों में सहभागिता बढाने के प्रयत्न किये जा सकते हैं जिससे यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि पार्थक्य में कमी आएगी और इस प्रकार औषधि व्यसन की सं भावना को कम किया जा सकेगाद्य योग एवं ध्यान जैसी प्रणालियों का अभ्यास करते हुए स्वास्थ्य को विकसित करने के प्रयास में सम्मिलित होने पर युवक स्वतः स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाने वाले तत्वों से अपना बचाव करने लगेंगे।

औषधि व्यसन की समस्या के लिए उपचार-

गपी एवं वुड्स (2000) ने औषधि व्यसन के उपचार हेतु नार्कोटिक एनानिमस/अल्कोहलिक एनानिमस उपागम, क्षति न्यूनीकरण उपागम एवं मनोवैज्ञानिक परामर्शन उपागम का वर्णन किया हैं। अल्कोहलिक एनानिमस और

उसके प्रारूप के आधार पर विकसित नारकोटिक्स एनानिमस के उपचारात्मक उपागम में सम्मिलित प्रमुख प्रविधियाँ कुछ बातों पर विशेष ध्यान देती है-

- उपचार प्रक्रिया में किसी व्यक्ति को व्यसनी जैसा नामकरण नहीं दिया जाना चाहिए,
- शरीर में विद्यमान औषधि अवशेष के विषैले एवं आपूर्ति की माँग उत्पन्न करने वाले प्रभाव को डीटोक्सिफीकेशन के माध्यम से दूर करना चाहिए
- यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि व्यक्ति स्वयं को नियंत्रित कर पाने में अक्षम है,
- व्यक्ति द्वारा किसी उपचारक या मनोपचारक को अधिक सक्षम व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए,
- व्यक्ति की उपचार प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी प्रोत्साहित की जानी चाहिए
- प्रार्थी व्यक्ति को अपनी कमियों की जानकारी होनी चाहिए तथा उसे दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए
- उपचारात्मक प्रक्रिया में सम्पूर्ण परिवार को सम्मिलित किया जाना चाहिए
- उपचार प्रक्रिया को अनेक आयामों साईकियाट्रिक, साइकोलॉजिकल, आध्यात्मिक, सामाजिकः पर ध्यान देना चाहिए,
- उपचार प्रक्रिया दीर्घकालिक होनी चाहिए, जिसमें जीवन के लिए आशा का तत्व सम्मिलित होना चाहिए।
- ऐसे व्यक्तियों में अपने जैसे अन्य व्यक्तियों की सहायता करने के लिए समर्पण/वचनबद्धता होनी चाहिए।

क्षति न्यूनीकरण उपागम का अभिग्रह यह है कि औषधि का दुरुपयोग करने वाले व्यक्तियों का उपचार उनकी शर्तों पर किया जाना चाहिएद्य इसके प्रथम चरण में औषधि सेवन की मात्रा को स्थिर किया जाता है अर्थात मात्रा को बढ़ने से रोका जाता हैं। अगले चरण में स्थिर मात्रा को घटाया जाता हैं। प्रायः उपचार की पूरी अवधि में मनोपचार प्रदान किया जाता हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं की भी सहायता ली जाती है तथा समस्या केन्द्रित निर्देशात्मक परामर्शन प्रक्रिया में उनकी सहभागिता हो सकती है, यद्यपि कि इस उपागम की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि यह प्रक्रिया व्यक्ति को औषधि व्यसन की वर्त्तमान मात्रा को बनाये रखने के लिए प्रोत्साहित करती है किन्तु दूसरी दृष्टि से विचार करने पर यह प्रक्रिया कहीं अधिक यथार्थवादी प्रकट होती हैं।

i. औषधि व्यसन के मनोपचार हेतु मुख्यतः संज्ञानात्मक-व्यवहारात्मक उपागम एवं आरईबीटी (**REBT**) उपागम का उपयोग किया जाता हैं। अनुबंधन आधारित प्रक्रियाओं की श्रेणी में प्रमुख लाभकारी प्रविधियां निम्नलिखित हैं-

ii. प्रच्छन्न विलोप (**Covert extinction**)

iii. विरुचिकारक प्रति अनुबंधन (**Aversive counter conditioning**) एवं

iv. प्रच्छन संवेदीकरण (**Convert sensitization**)

औषधि व्यसन उपचार प्रक्रिया का एक अन्तरंग पक्ष पुनरावृत्ति की समस्या का प्रबंधन है (Marlatt and Grdon1985). यदि किसी व्यक्ति की यह जीवन शैली बन गयी है कि वह जीवन की समस्याओं तथा तनाव का सामना करने से बचाता है तथा औषधि सेवन के शरण में तनाव से विश्रांति का अन्वेषण करता है तो उसके द्वारा उपचारोपरांत पुनः सेवन आरम्भ किये जाने की संभवना प्रबल होती हैं। ऐसे व्यक्ति को तनाव प्रबंधन सीखना, जीवन की समस्या का डटकर सामना करने की प्रवृत्ति विकसित करना उपयोगी होगा।

6.12 सारांश

समाधान केन्द्रित परामर्श विधि के अधिगामोपरांत परामर्शदाता अपने अनुभव के आधार पर स्वयं की विधि/पैटर्न विकसित करता है तथा प्रयोग करता हैं। यद्यपि कि वाद्य यन्त्र बजाना सीखने की भाँती इसमें भी बुनियादी कौशलों से शुरू करना अनिवार्य होता हैं। ठीक इसी प्रकार साक्षात्कार का प्रवाह महत्वपूर्ण हैं। यदि कोई परामर्शदाता अजूबा प्रश्न, या मापनी या प्रतिशत प्रयोग करता है तो परामर्शदाता बिना पारंपरिक अनुक्रम का अनुकरण किये एक बार में ही प्रकरण पर पहुँच सकता हैं। मापनियों या उद्देश्यों से सम्बंधित प्रश्नों के उत्तर इतने विस्तृत एवं सकारात्मक हो सकते हैं कि अजूबा प्रश्नों की आवश्यकता ही न हो।

उत्तर आधुनिकतावाद के कारण ऐसे सामाजिक वैचारिक परिवेश की रचना हुई जिसके कारण परामर्शन मनोविज्ञान के क्षेत्र में समन्वायन एक प्रभावशाली आन्दोलन के रूप में प्रकट हुआ हैं।

इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले परामर्शन प्रारूपों में से प्रमुख प्रारूप निम्नवत हैं-

i. संज्ञानात्मक-विश्छेषणात्मक उपागम

ii. बहुआयामी उपचार

iii. दक्ष-सहयोगी प्रतिरूप

iv. पार-सैद्धांतिक उपागम

एच आई वी संक्रमित व्यक्ति परीक्षणोंपरांत सर्वप्रथम परिणाम के बारे में अविश्वास की प्रतिक्रिया से आरम्भ करता है किन्तु तत्पश्चात यह पूरी तरह टूट जाने की अवस्था में पहुँचता हैं। परामर्शन कार्य द्वारा उसे अपनी दशा का सृजनात्मक रूप में सामना करते हुए लम्बी आयु तक सफलता पूर्वक जीवन यापन करने की दशा में सहायता दी जा सकती हैं। व्यक्ति के समक्ष जीवन के संकट के फलस्वरूप खतरे एवं चुनौतियाँ दोनों ही प्रकट होती हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए निराशा, असहायता जैसी नकारात्मक अनुभूतियाँ उपयुक्त नहीं होती हैं।

सामाजिक स्तर पर क्या उचित और अनुचित है इस विषय का पुनर्मूल्यांकन किया जा सकता हैं। व्यक्ति के लिए आत्मग्लानि एवं लज्जा की अनुभूति से बाहर आने की आवश्यकता होती हैं। मनोपचार/परामर्शन के अंतर्गत इस विषय में कार्य किया जा सकता हैं। प्रार्थी के लिए समग्र प्रयास में गोपनीयता अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं। कुछ प्रार्थी द्वारा आत्महत्या, ऐच्छिक मृत्यु की माँग जैसे विचार प्रस्तुत किया जा सकता है, वे अपनी वसीयत तैयार कराना चाहते हैं। ऐसे सन्दर्भ में परामर्शन कार्य का उद्देश्य लम्बी आयु के लिए संघर्ष हेतु प्रार्थी को तैयार करना होना चाहिए क्योंकि जीवन समापन एवं जीवनोपरांत विषयों पर विचार-विमर्श से उपचार एवं समायोजन कार्य प्रभावित होता हैं।

औषधि व्यसन उपचार प्रक्रिया का एक अन्तरंग पक्ष पुनरावृत्ति की समस्या का प्रबंधन है (**Marlatt and Grdon**,1985). यदि किसी व्यक्ति की यह जीवन शैली बन गयी है कि वह जीवन की समस्याओं तथा तनाव का सामना करने से बचाता है तथा औषधि सेवन के शरण में तनाव से विश्रांति का अन्वेषण करता है तो उसके द्वारा उपचारोपरांत पुनः सेवन आरम्भ किये जाने की संभवना प्रबल होती हैं। ऐसे व्यक्ति को तनाव प्रबंधन सीखना, जीवन की समस्या का डटकर सामना करने की प्रवृत्ति विकसित करना उपयोगी होगा।

6.13 शब्दावली

MSFBT: Solution Focused Brief Therapy (समाधान केन्द्रित संक्षिप्त उपचार)

एच आई वी (HIV) Human Immuno-deficiency Virus

एड्स (AIDS) Aquired Immune Deficiency Syndrome

औषधि व्यसनः औषधि व्यसन साधारणतः व्यक्ति द्वारा चिंता, तनाव या पीड़ा के प्रतिरोध के लिए अथवा आनंदानुभूति के लिए बिना किसी उपचारात्मक उपयोग के अथवा चिकित्सकीय परामर्श के बिना स्वयं के स्तर पर किया जाने वाला उपयोग है।

6.14 निबंधात्मक प्रश्न

समाधान केन्द्रित परामर्श से आप क्या समझते हैं? समाधान केन्द्रित परामर्श के सन्दर्भ को प्रभावित करने वाली मान्यताओं का वर्णन कीजिये।

i. समन्वयवादी परामर्श क्या है? इसमें प्रयुक्त उपागमों पर प्रकाश डालें।

ii. एच आई वी/एड्स परामर्श से आप क्या समझते हैं? एच आई वी/एड्स में मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप के महत्त्व को स्पष्ट कीजिये।

iii. औषधि व्यसन को स्पष्ट कीजिये तथा इस समस्या के उपायों का वर्णन कीजिये।

6.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चौहान, विजयलक्ष्मी एवं जैन, कल्पना (2014), निर्देशन एवं परामर्श, अंकुर प्रकाशन, उदयपुर,
2. राय, अमरनाथ एवं अस्थाना, मधु (2012), आधुनिक परामर्शन मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
3. राय, अमरनाथ एवं अस्थाना, मधु (2012), निर्देशन एवं परामर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
4. चौहान, विजयलक्ष्मी एवं जैन, कल्पना (2014), निर्देशन एवं परामर्श, अंकुर प्रकाशन, उदयपुर,
5. राय, अमरनाथ एवं अस्थाना, मधु (2012), आधुनिक परामर्शन मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
6. राय, अमरनाथ एवं अस्थाना, मधु (2012), निर्देशन एवं परामर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
7. अस्थाना, निधि एवं अस्थाना, बिपिन (2013-14), निर्देशन और उपबोधन, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा.

इकाई 7- अवसाद, व्यक्तित्व और लिंग पहचान विकृति के लिए संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन; तनाव संरोपण, आत्म.अनुदेशात्मकए आत्म प्रंबधन, समस्या समाधान (Cognitive Behavior Modification:Stress Inoculation, Self-Instructional, Self management, Problem Solving for Depression, Personality and Gender Identity Disorder)

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा - अवसाद व्यक्तित्व व लिंग पहचान विकृति

7.4 तनाव संरोपण प्रशिक्षण

7.5 आत्म -अनुनिदेशात्मक प्रशिक्षण

7.6 आत्म - प्रबन्धन

7.7 समस्या समाधान चिकित्सा

7.8 सारांश

7.9 शब्दावली

7.10 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

7.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.1 प्रस्तावना

संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन ,संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा का ऐसा उपागम है जो नकारात्मक स्व बातचीत तथा सकारात्मक स्व बातचीत पर ध्यान केन्द्रित करता है। संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा का उद्देश्य जीवन की दिशा को नकारात्मकता से सकारात्मकता की ओर ले जाना होता है। इस संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा में डोनाल्ड मिशेनबाम (Donald Michenbaum) का महत्वपूर्ण योगदान है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1. तनाव संरोपण को समझ सकेगे।
2. आत्म -अनुदेशात्मक को समझ सकेगे।
3. आत्म प्रबंधन को समझ सकेगें।
4. समस्या समाधान को समझ सकेगे।

7.3 संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा - अवसाद व्यक्तित्व व लिंग पहचान विकृति

संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा क्लाइट या व्यक्ति के स्व संवाद पर ध्यान केंद्रित करती है। माइकेनबाम के अनुसार व्यक्ति का स्व -संवाद व्यक्ति के व्यवहार को उतना ही प्रभावित करता है जितना उस व्यक्ति का अन्य लोगों से किया गया संवाद। संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा का मुख्य केन्द्र बिन्दु इस बात पर है कि क्लाइट को अपने चिंतन, भावना, व्यवहार तथा दूसरों पर पडने वाले प्रभाव के बारे में जागरूक होना चाहिये।

बेक के संज्ञानात्मक चिकित्सा के समान इस उपागम की भी मुख्य अभिग्रह है कि सभी दुखद संवेग कुसमायोजित विचारों का परिणाम है। माइकेनबम के उपागम में संज्ञानात्मक पुनर्सरचना बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में व्यवहार परिवर्तन क्रमिक होता है। इसमें पहले क्लाइट स्व - निरीक्षण करता है। इसमें क्लाइट को खुद से संवाद करना होता है। इसके पश्चात क्लाइट को नवीन आंतरिक संवाद करना सिखाया जाता है। इसके पश्चात क्लाइट नयी योग्यता को सीखता है। लिंग पहचान विकृति, अवसादी व्यक्तित्व का इलाज संज्ञानात्मक व्यवहार सुधार चिकित्सा के द्वारा आसानी से किया जा सकता है।

अवसादी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की रूचि जीवन से पूर्णतः समाप्त हो चुकी होती है। उसकी भूख कम हो जाती है , नींद अव्यवस्थित हो जाती है दैनिक कार्यो में उसका मन नहीं लगता है। संज्ञानात्मक व्यवहार सुधार चिकित्सा के द्वारा सर्वप्रथम उन्हें ये सीखाया जाता है कि वे नकारात्मक विचारों तथा भावनाओं से पीडित नहीं है बल्कि वे अपने नकारात्मक स्व संवाद द्वारा अवसाद बढाने में योगदान दे रहे है।

लिंग पहचान विकृति के बारे में विद्वानों ने कहा है कि लैंगिक पहचान विकृति एक तरह से व्यक्ति के जन्मजात लिंग तथा उसके द्वारा अनुभव किये जाने वाले लिंग के बीच असंगतता है। वे पुरूष या महिला जो इससे ग्रस्त होते है वे अपने को सामाजिक परंपरा में फिट नहीं पाते है। इससे उनके परिवार व कार्यस्थल में उन्हें अनेक प्रकार तनाव का सामना करना पडता है। इसकी वजह से कभी -कभी ये आत्महत्या तक कर लेते है।

संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा द्वारा इस बीमारी से ग्रस्त लोगों में स्वयं को लेकर संवाद का प्रशिक्षण दिया जाता है । इसके द्वारा उन्हें अपने विचार , भावनाओं ,कार्यो, शारीरिक प्रतिक्रियाओं के बारे में संवेदनशीलता बढाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जैसे जैसे संज्ञानात्मक सुधार चिकित्सा बढती जाती है , वैसे

वैसे क्लाइट अपनी समस्या को नये प्रकाश में देखने लगता है तथा संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा के प्रशिक्षण द्वारा धीरे धीरे वह अपनी लैंगिक भूमिका के बारे में स्वयं से सकारात्मक संवाद करने लगता है।

7.4 तनाव संरोपण प्रशिक्षण

तनाव संरोपण प्रशिक्षण का सबसे महत्वपूर्ण अंग संरोपण है। इसका उपयोग अभिवृत्ति परिवर्तन के लिये चिकित्सा तथा सामाजिक- मनोवैज्ञानिक शोधों में किया जाता है। संरोपण से तात्पर्य इय बात से है कि चिकित्सक रोगी को तनाव का प्रतिरोध करने के लिये वैसे ही तैयार करता है, जैसे चिकित्सक रोगियों को किसी बीमारी के प्रभाव से बचने के लिये टीका लगाता है।

मनोवृत्ति परिवर्तन के क्षेत्र में मैकगुयेर (McGuireW.J.1964) ने यह देखा कि व्यक्ति को यदि पहले से ही किसी अभिवृत्ति संबंधित सूचना प्रदान कर दी जाये तो व्यक्ति सूचना के प्रभाव से सुरक्षित या 'संरोपित' कर सकता है।

चिकित्सा तथा मनोवृत्ति संरोपण में व्यक्ति का प्रतिरोध ऐसे पर्याप्त मजबूत उद्दीपक को प्रदान किये जाने से जो प्रतिरोध प्रकमों को उत्पन्न कर सकता है तथा सुरक्षा प्रक्रम को उत्पन्न करता है, व्यक्ति में प्रतिरोध प्रक्रम को बढ़ावा देता है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण सिद्धान्त के अनुसार क्लाइट को यदि तनाव का मध्यम स्तर प्रदान किया जाये तो इससे व्यक्ति की प्रतिरोध क्षमता तथा स्वयं की प्रतिरोधक क्रियाशैली पर विश्वास उत्पन्न होता है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण का उपयोग व्यक्ति की तत्परता को बढ़ावा है तथा श्रेष्ठता को विकसित करता है।

सैद्धान्तिक आधार:- तनाव संरोपण प्रशिक्षण सिद्धान्त लेजारस व फोकमैन द्वारा प्रदान किये गये तनाव तथा प्रतिरोध क्षमता के संयोजन के दृष्टिकोण पर आधारित है। इस माडल के अनुसार तनाव तब उत्पन्न होता है जब व्यक्ति पर आरोपित मार्ग व्यक्ति के पास उपलब्ध संसाधनों (व्यक्ति, परिवार, समूह या समुदाय) से अधिक होती है ऐसा खासतौर पर तब अधिक होता है जब व्यक्ति के कल्याण को निरीक्षित किया जाता है।

समन्व्यक दृष्टिकोण के अनुसार तनाव न केवल वातावरण की विशेषता है और न ही केवल व्यक्ति की विशेषता। इसके स्थान पर तनाव व्यक्ति तथा वातावरण के बीच समन्व्यक, द्विदिशीय तथा गतिशील संबंध रखता है जिसमें व्यक्ति या समूह समायोजित मांगों को अपने पास उपलब्ध संसाधनो से अधिक समझता है।

तनाव संरोषण प्रशिक्षण से संबंधित एक अन्य महत्वपूर्ण जानकारी संरचित कहानी उपागम से प्राप्त होती है। यह उपागम व्यक्तियों, समूहों तथा समुदाय को एक कहानी कहने वाली संस्था के रूप में देखता हे। ये सभी अपने बारे में , अन्य लोगों के बारे में, संसार के बारे में तथा भविष्य के बारे में कहानी कहते हैं। व्यक्ति की कहानी की प्रकृति तथा कहानी की विषय-वस्तु जो वे अपने बारे में तथा दूसरों के बारे में कहते है, वे सभी व्यक्ति के रक्षात्मक प्रक्रम को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। वर्तमान में किये जा रहे अनेक शोधों से यह ज्ञात हुआ है कि

संज्ञान तथा संवेग, तनाव के प्रतिक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। खासतौर से उत्तर प्रतिघात प्रतिबल रोग में इसकी उपयोगिता सिद्ध होती है।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण क्या है ?

तनाव संरोपण प्रशिक्षण प्रत्येक व्यक्ति के अनुरूप किया जाता है तथा यह संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा का बहुमुखी रूप व तनाव संरोपण प्रशिक्षण तनाव से ग्रस्त लोगों के लिये सामान्य सिद्ध तथा नैदानिक नियमावली प्रदान करती है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण एक रामवाण औषधि नही है तथा यह अन्य चिकित्सा के पूरक का कार्य करती, जैसे लम्बे समय से आघात से ग्रसित रोगियों को यह चिकित्सा प्रदान की जा सकती है।

तनाव संरोपण के तीन चरण होते है-

1. संप्रत्यात्मक शिक्षण की अवस्था
2. योग्यता का अर्जन तथा
3. समेकन उपयोग तथा पुनः जॉच की अवस्था

ये सभी चरण तनाव के स्रोत की प्रकृति पर तथा क्लाइंट के तनाव की प्रतिरोध क्षमता पर निर्भर करता है।

प्रारंभिक अवधारणा के चरण में क्लाइट व चिकित्सक के मध्य सहयोग संबंध की स्थापना होती है। यह संबंध आधार का कार्य करता है जिससे क्लाइंट को तनाव का सामना करने के लिये प्रोत्साहित कर सके तथा विभिन्न प्रकार की प्रतिरोधक योग्यताओं का उपयोग प्रशिक्षण सत्रों में कर सके । चिकित्सीय संबंध के निर्माण तथा उसके अनुरक्षण के अतिरिक्त, तनाव संरोपण प्रशिक्षण के इस चरण का दूसरा उद्देश्य क्लाइट की अपने तनाव व प्रतिरोधक स्रोतों की प्रकृति व प्रभावों के बारे में समझ तथा जागरूकता को बढ़ा सकें । इस शैक्षिक प्रर्क्रिया के लिये अनेक प्रकार की नैदानिक तकनीकियों का उपयोग किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त यह शैंक्षिक प्रक्रिया पूरे तनाव संरोपण प्रशिक्षण में चलती रहती है । इसमें अनेक प्रकार की नैदानिक तकनीके जैसे सुकरात अन्वेषण आधारित साक्षात्कार, मनोवैज्ञानिक परीक्षण, प्रतिक्रिया का तरीका, आत्म-निरीक्षण, प्रक्रियाओं तथा फिल्मों के द्वारा माडलिंग आदि का उपयोग जागरूकता तथा व्यक्तिगत नियंत्रण व प्रभुत्व के लिये किया जाता है।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण के दूसरे चरण में क्लाइट की सहायता की जाती है कि वह प्रतिरोधक योग्यताओं को प्राप्त कर सके तथा उन सभी प्रतिरोधक क्षमताओं को जो उसके पास पहले से उपस्थित है उनका समेकन कर सके। इस योग्यता प्रशिक्षण चरण का केन्द्रण सामान्यीकरण तथा उपचार के प्रभाव के अनुरक्षण के लिये तथा सामान्यीकरण की प्राप्ति के लिये नियमवली का पालन करना है। चिकित्क केवल सामान्यीकरण के लिये ''प्रशिक्षण तथा उम्मीद'' नही कर सकता। इसके लिये तनाव प्रशिक्षक को आवश्यक रूप से चिकित्सा संबंध में सामान्यीकरण प्रशिक्षण तकनीक का निर्माण करना होता है।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण के तीसरे चरण में क्लाइंट के पास यह अवसर होता है कि वह अपनी सभी प्रतिरोध क्षमताओं का उपयोग कर सके। इसके अंतर्गत कल्पना आदि का प्रयोग किया जाता है। इस चरण की केन्द्रित भूमिका यह होती है कि इसमें पुनरावृर्तन निरोध प्रक्रिया का उपयोग होता है। तनाव संरोपण प्रशिक्षक क्लाइट के साथ विभिन्न प्रकार के उच्च जोखिम युक्त व पद परिस्थितियों जिन्हें वे अनुभव कर सकते हैं को खोजता है। (अतरवैयक्ति, संघर्ष, आलोचना, सामाजिक दबाव आदि)। इसके पश्चात क्लाइट प्रशिक्षक के साथ सहयोगपूर्ण तरीके से अभ्यास कर सकता है (समूह में अन्य क्लाइट के साथ भी कर सकता है) तथा विभिन्न प्रकार की अंतः तथा अंतर तनाव प्रतिरोध तकनिकियों का प्रयोग किया जा सकता है। पुनरावृर्तन निरोध प्रक्रिया के अतंर्गत, क्लाइट को यह सिखाया जाता है कि वे असफलता को इस तरह देखे कि वे ''सीखने का अवसर है'' न कि उन्हें आपत्तिजनक लगे।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण के अंतर्गत महत्वपूर्ण लोगों का साथ तथा वातावरणीय, प्रहस्तलन सम्मिलित है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण में प्रशिक्षक यह मानता है कि क्लाइट जो तनाव महसूस कर रहा है वह स्थानिक होता है, सामाजिक होता है, संस्थागत होता है, तथा टाला नही जा सकता है। उदाहरण के लिये मेंडिकल की परीक्षाओं की तैयारी में, प्रशिक्षक न केवल तनाव ग्रस्त अभिभावकों को तनाव प्रतिरोध क्षेमता सीख सकता है बल्कि अस्पताल के कर्मचारियों को भी प्रशिक्षण दे सकता है जिससे अस्पताल तथा चिकित्सकीय तनाव को कम किया जा सके।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण की विधि:- तनाव संरोपण प्रशिक्षण की सबसे बड़ी शक्ति इसका लचीलापन है। इसका उपयोग व्यक्तियों, परिवारों तथा छोटे व बड़े समूहों में किया जाता है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण की समयावधि भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती है यह लगभग 20 मिनट-से 1 घंटा प्रति साप्ताह भी हो सकती है। इसका उपयोग बार-बार घटित होने वाले मानसिक रोगों से प्रभावित रोगियों पर तथा दीर्घ कालिक चिकित्सकीय समस्याओं से जूझ रहे व्यक्तियों पर की जा सकती है।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण के व्याख्यात्मक उदाहरण

तनाव संरोपण प्रशिक्षण का उपयोग चिकित्सा तथा बचाव प्रक्रिया दोनों में किया जाता है। इसका उपयोग अनेक प्रकार की जीव संख्या पर किया जाता है जिन्हें उच्च मात्रा में कार्य से संबंधित तनाव रहता है। चिकित्सकीय आधार पर तनाव संरोपण प्रशिक्षण संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक तनाव व्यवस्थापन प्रक्रिया से संबंधित है। इनके अतिरिक्त चिन्ता व्यवस्थापन उपागम, प्रतिरोध योग्यता प्रशिक्षण तथा संज्ञानात्मक भावत्मक तनाव व्यवस्थापन प्रशिक्षण का उपयोग अनेक प्रकार के क्लाइट के ऊपर किया जाता है।

इसका नैदानिक उपयोग निम्न है-

१. **सामान्य चिकित्सिकीय रोगी-** ऐसे से रोगी जिन्हें विभिन्न प्रकार के तथा दीर्घकालिक र्दद से संबंधित रोग है ऐसे रोगी जिन्हें स्तन कैंसर है तथा उच्च तनाव के रोगी है, जले हुये रोगी, अल्सर के रोगियों तथा गठिया से परेशान रोगियों के लिये यह चिकित्सा उपयोगी है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण का उपयोग दाँत के उन रोगियों पर भी किया जाता है जो सर्जरी होनी है। इसका उपयोग टाईप-१ व्यक्तियों के साथ ही साथ उन लोगों पर भी किया जाता है जो बीमार बच्चों तथा व्यस्कों की देखभाल करते है।

२. **मनोचिकित्सकीय रोगी**-जिनके अन्दर शारीरिक शोषण के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है व्यस्क व किशोर जिन्हें चिन्ता की तीव्र समस्या हो तथा उनमें जो आक्रामक व्यवहार को नियत्रित नहीं कर पाने के लिये भी यह प्रशिक्षण उपयोगी हैं।

३. **वे व्यक्ति जिन्हें निष्पादन से संबधित चिन्ता होती है** जैसे सार्वजनिक रूप से भाषण देना तथा उन व्यक्तियों में जिन में जानवरों से संबंधित दुर्भिति है तथा उड़ने से संबंधित दुर्भिति है। ये चिकित्सकीय प्रशिक्षण उपयोग व्यसायिक समूह जैसे अध्यापक, सैन्य कर्मचारियों, मनश्चिकित्सकीय सदस्य तथा आपदा व सुरक्षा कर्मचारियों में इसका उपयोग किया जाता है।

४. **व्यक्ति जिन्हे तनाव पारगमन की स्थिति का सामना करना पड़ता है** जैसे बेरोजगारी की स्थिति, या फिर वे किसी जगह का नये परिवर्तन का सामना करते हैं। जैसे हाई स्कूल या कालेज मे पुनः प्रवेश, विदेश में नियोजन अथवासेना में नौकरी पाना आदि के लिये यह प्रशिक्षण विधि काफी उपयोगी है।

संक्षेप में इसके उदय के समय (1976) से, इसका उपयोग चिकित्सा तथा बचाव के लिये विभिन्न प्रकार की नैदानिक जीवसंख्या पर किया जाता है जो उच्च तनाव व्यवसायिक समूह हैं।

इन विभिन्न जीवसंख्या में से कुछ का वर्णन निम्नलिखित है-

चिकित्सकीय समस्या से संबंधित रोगी(Patients with Medical Prohtens**)**

तनाव संरोपण प्रशिक्षण चिकित्सकीय रोगियों तनाव संरोपण प्रशिक्षण की एक वृहद शैक्षिक पृष्ठभूमि होती है जिसमें रोगी तथा उनकी देखभाल करने वाले की क्रियात्मक तथा संवेगिक सूचना प्रदान की जाती है। इस परीक्षण में रोगी स्वयं की विशेष स्वभाव के अनुसार तनाव प्रतिरोध क्षमता का उपयोग कर सकता है। तनाव प्रतिरोध क्षमताओं के अतंर्गत माडलिग जिसमें काल्पनिक तथा व्यवहारात्मक अभ्यास सम्मिलित होता है, का प्रयोग किया जाता है। इस व्यवहारात्मक अभ्यास में प्रतिपुष्टि का उपयोग किया जाता है। इन सबके साथ यह बात ध्यान देने योग्य है कि तनाव संरोपण प्रशिक्षण का उपयोग उम्र के ध्यान में रखते हुये किया जाना चाहिये तथा रोगी के तनाव प्रतिरोध के तरीकों को भी देखना चाहियें। अंत में यह कहा जा सकता है कि तनाव संरोपण प्रशिक्षण में व्यक्ति निष्पादन देखना चाहिये।

तनाव संरोपण का प्रयोग उपचार तथा प्रतिरोध दोनों ही रूपों में किया जा सकता है। इसमें विभिन्न प्रकार के चिकित्सकीय तथा मनोवैज्ञानिक समस्या से ग्रस्त लोगों की जनसंख्या होती है जिनमें व्यवसाय से संबंधित तनाव का अनुभव करने वाले विभिन्न व्यवसायिक समूह होने भी सम्मिलित होते है । चिकित्सकीय आधार पर तनाव संरोपण संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक प्रबन्धन प्रक्रिया, चिन्ता प्रबंधन उपागम, प्रतिरोध प्रशिक्षण तथा संज्ञानात्मक भावात्मक तनाव प्रबन्धन प्रशिक्षण से निकटवर्ती होता है ।

निष्कर्ष:- पिछले कई वर्षो से तनाव संरोपण, प्रशिक्षण का विभिन्न प्रकार के तनाव से ग्रस्त जीवसंख्या पर प्रयोग किया गया है। प्रत्येक मामले में तनाव संरोपण का प्रयोग विशिष्ट जीवसंख्या तथा परिस्थिति के अनुसार निर्मित किया जाता है। यह भी स्पष्ट है कि तनाव संरोपण एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें अनेक प्रकार के संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक चिकित्सा का उपयोग किया जाता है जिसमे क्लाइट के साथ विशिष्ट चिकित्सकी व संबंध बनते है।

मनोशिक्षिकीय विशेषता भी इसमें सम्मिलित है जिसमें सुकरात की अन्वेषण उन्मुखी जाँच प्रक्रिया सम्मिलित होती है। सहयोगपूर्ण लक्ष्य निर्माण जिससे आशा का संचार होता है तथा स्वीकृति आधारित प्रतिरोध योग्यता प्रशिक्षण को पोषित करता है। तनाव संरोपण प्रशिक्षण का उपयोग लक्षण के आधार पर कर सकते है ।

7.5 आत्म अनुनिदेशात्मक प्रशिक्षण

आत्म-अनुनिदेशात्मक प्रशिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति का आत्म नियंत्रण शाब्दिक कथनों से किया जाता है जिससे अशाब्दिक कार्यो को निदेर्शित किया जाता है । मिशेनबाम तथा गडमैन ऐसे प्रथम शोधकर्ता थे जिन्होंने आत्म-नियंत्राण प्रशिक्षण का उपयोग नैदानिक समस्याओं के समाधान के लिये किया। उनका शोध प्रारंभिक विद्यालयी बच्चों जिन्हें जो आवेगी होते है पर आत्म निर्देश का उपयोग को उनके शैक्षिक कार्य को बढ़ावा देने के लिये किया था।

आत्म- अनुनिदेशात्मक प्रशिक्षण एक साक्ष्य आधारित चिकित्सकीय रणनीति है जिसका उपयोग प्रायः संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक चिकित्सा के अंग के रूप में किया जाता है इस प्रशिक्षण में व्यक्ति को अनेक प्रकार के आत्म कथनों के बारे में समझाया जाता है जिसका उपयोग या तो व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिये किया जाता है या कुछ कार्य करने के लिये किया जाता है ।

इसका सैद्धान्तिक आधार लेब बायगोश्टकी तथा अलेक्जेंडर लरिया का कार्य है जिसमें उन्होंने 1980 के अंत में भाषा तथा व्यवहार में कार्यात्मक संबंध बताया था । आत्म अनुनिदेशात्मक प्रशिक्षण सामाजिक अधिगम सिद्धान्त के तत्वों खासकर संज्ञानात्मक माडलिंग को समाहित कर तथा साथ ही साथ भाषा के आत्म नियम तथा अंतरिक अभ्यास को भी अतंनिर्हित करता है। आत्म- अनुनिदेशात्मक प्रशिक्षण के दो अंग है जो

क्रमश संज्ञानात्मक मॉडलिंग तथा आत्म-निर्देश के रूप में जाने जाते है । संज्ञानात्मक मॉडलिंग के अंतर्गत चिकित्सक आत्म निदेशात्मक विचार को आत्म अनुनिर्देश के शाब्दिक रूप में अभिव्यक्त करता है।

क्लाइट चिकित्सक के निर्देश को कार्य करते हुये सुनता रहता है। इस द्वितीय चरण को बाहय आत्म निर्देशित शाब्दिकरण कहते है। इसके पश्चात क्लाइट धीरे-धीरे आत्म निर्देशित प्रशिक्षण के अंतर्गत जो प्रशिक्षण किये जाते है उनका उपयोग विभिन्न प्रकार के संज्ञानात्मक कार्यो में किया जाता है। अनेक प्रकार के शोधो से यह ज्ञात हुआ है कि क्लाइट को यह सीखते है कि उन्हें क्या करना है उन्हें क्या योजना बनानी है? स्वाभाविक रूप से कार्य योजना के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करते है तथा प्रच्छन्न माध्यम का उपयोग उन्हें निर्देशित उनका निरीक्षण तथा उनका प्रदर्शन सही करने के लिये करते हैं।

आत्म-निर्देश प्रशिक्षण का विकास

आत्म निर्देशात्मक प्रशिक्षण के अंतर्गत सामाजिक अधिगम सिद्धन्त तथा भाषा के आत्म नियंत्रण प्रारूप को समाहित किया जाता है। संज्ञानात्मक मॉडलिंग शोधों से ज्ञात होता है कि मॉडल के द्वारा जो व्यवहार प्रदर्शित किये जाते है वे व्यवहार अवलोकन करने वाले लोगों के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं।

सामाजिक अधिगम सिद्धान्त के साथ-साथ मिशेनबाम ने शाब्दिक अधिगम मध्यस्थता जो कि वाइगोस्टकी तथा लुरिया के कार्यो से प्रेरित था को भी इसमें समाहित किया। मिसेनबाम ने मॉडलिंग तथा भाषा मध्यस्थल को पाँच अधिगम सिद्धान्त में जोडा है। -निर्देशक या चिकित्सक ने ऐच्छिक व्यवहार तथा उसके सहयोगी कार्यो को सुनने योग्य विस्तृत,आंतरिक विचारों को संवाद के रूप में प्रस्तुत किया इस चरण में, संज्ञानात्मक मॉडलिंग मे एक व्यस्क जोर से बोलते हुये कार्य करता है जबकि एक क्लाइट देखता तथा सुनता हैं । दूसरे चरण में, मॉडल के आदेशों का अनुकरण करते हुये, क्लाइट उसी काम को अपरोक्ष तथा बाहय निर्देश में करता है। अगले चरण में क्लाइट कार्य को निर्देश को बुदबुदाते हुये अपरोक्ष निर्देश में करता है। अंततः एक क्लाइट कार्य को आंतरिक भाषण-प्रच्छन्न आत्म- निर्देश के रूप में करता है ।

मिसेनबाम ने आत्म-निर्देश प्रशिक्षण का उपयोग अल्प जनसंख्या पर किया । ज्ञात होता है कि इसमें लचीलापन आ सकता है तथा व्यक्ति की आवश्यकता के अनुरूप इसका उपयोग किया जा सकता है । मिसेनबाम ने यह उपकल्पना बनायी है कि आत्म-निर्देश प्रशिक्षण बूढे लोगों पर अधिक उपयोग सिद्ध होता है । जो प्रायः तर्कणा व समस्या समाधान में समस्या महसूस करते है। इस प्रशिक्षण का उपयोग छोटे-2 बच्चों पर किया गया जो शाब्दिक रणनीति का उपयोग नही कर पाते है । इस प्रशिक्षण का उपयोग ऐसे लोगों पर किया गया जो सामाजिक रूप से अलग-अलग हो जैसे व्यस्क मनोविदलता से पीड़ित व्यक्ति, फोबिया का अनुभव करने वाले क्लाइट तथा कालेज के विद्यार्थी जो सृजनात्मकता को बढ़ावा चाहते हैं।

आत्म- निर्देशात्मक प्रशिक्षण के तत्व

आत्म-निर्देशात्मक प्रशिक्षण बतलाता है कि आत्म-निर्देश का प्रयोग करते हुये कार्य को किस प्रकार प्रभावशाली ढंग से किया जाये। आत्म निर्देश प्रशिक्षण में संज्ञानात्मक मॉडल ऐसे चिकित्सकीय तथा कार्य प्रस्तुत करते हैं जो कि किसी कार्य को पूरा करने के लिये आवश्यक है।

एक चिकित्सक यह भी विश्लेषित कर सकता है कि क्यों विचार तथा कार्य आवश्यक हैं। आत्म निर्देशात्मक प्रशिक्षण क्लाइट को यह बताता है कि किसी कार्य आत्म निर्देशात्मक विधि से कैसे किया जा सकता है।

आत्म-निदेशात्मक विधि के चरण- आत्म-निर्देशात्मक विधि में किसी व्यक्ति को कोई कार्य स्वयं करने को कहा जाता है जिसे व्यक्ति को करना होता है। इसमें चिकित्सक के ऊपर जिम्मेदारी न होकर पूरी जिम्मेदारी क्लाइट के ऊपर होती है। "आत्म- संवाद" के उपयोग से अथवा निर्देश को जोर से बोलने पर निर्देश की जिम्मेदारी चिकित्सक से हटकर क्लाइट के ऊपर आ जाती है। यह विकास सीखना तथा उपयोग की सरल प्रक्रिया है। अतंतः इस प्रक्रिया से क्लाइट अपने जीवन को स्वयं निर्देशित करता है जहॉ उसे निर्देशात्मक लेबल प्राप्त नही होता, जैसे बस में, कार्य में अथवा मित्रों के साथ, आत्म निर्देश आत्म प्रबंधन की एक रणनीति है जो कि व्यक्ति की योग्यता निर्धारण में योगदान करता है। निर्देशात्मक विधि का लक्ष्य व्यक्ति को स्वयं स्वतंत्रता पूर्वक कार्य को पूरा करने में सहायता प्रदान होता है। चूँकि कोई भी कार्य हमेशा शाब्दिक व्यवहार के नियंत्रण में नही रहता है अतः आत्म-निर्देशात्मक प्रशिक्षण कुछ आरम्भित प्रशिक्षण की मॉग करता है। आत्म निर्देशात्मक-प्रशिक्षण के द्वारा अंतर्गत निम्न चरण सम्मिलित होते है। ये चरण के कार्य से प्रभावित हैं-

- **चरण - 1 समस्या की पहचान करना**- इस चरण में ऐसी समस्या की पहचान करना होता है जिसका समाधान करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिये अगर एक व्यक्ति भूखा है और कुछ खाने के लिये चाहता है तो समस्या ये हो सकती है मैं भूखा हूँ।
- **चरण - 2 समस्या के लिए संभावित प्रतिक्रियाओं की पहचान** -इस चरण में किसी समस्या का कोई समाधान प्रापत करने की कोशिश की जाती है। यह समाधान परिस्थिति पर निर्भर करेगा। उदाहरण के लिये भूख को दिन के समय तथा स्थान के आधार पर भिन्न - भिन्न प्रकार से संबोधित किया जा सकता है। आत्म निर्देशिता का उपयोग दिन के समय या परिस्थिति के लिये भी किया जा सकता है। इस केस में, आत्म निर्देशात्मक प्रशिक्षण दिन के भोजन से संबधित है। दिन के भोजन के समय भूख लगनेपर एक प्रतिक्रिया हो सकते हैं। " मैं सैंडविच खाऊँगा "।
- **चरण – 3 प्रतिक्रिया का मूल्यांकन** -इसमें क्लाइट कह सकता है कि मैने अपने लिये एक सैंडविच निश्चित कर लिया है। इसके पश्चात क्लाइट के लिये यह आवश्यक होता है कि क्या उन्होंने वैसा ही

किया जैसा उन्होंने स्वयं को करने के लिये कहा था। "मैनें अपने लिये सैंडविच निश्चित किया क्योंकि मै भूखा था।"

- **चरण - 4 आत्म- पुनार्वतन** क्लाइट के लिये यह आवश्यक होता है कि वे शाब्दिक रूप से यह स्वीकृत करें कि उन्होंने कार्य कर लिया है। जैसे "बहुत अच्छा। अब मैं भूखा नही हूँ"।
- **चरण - 5 शाब्दिक कथनों से मिलान हेतु व्यवहार को प्रशिक्षित करना-**एक बार ये विचार पहचान लिये जाते हैं, उसके पश्चात चिकित्सक के लिये आवश्यक हो जाता हे कि वह चरण को क्लाइट के साथ इस चरण को सीखने हेतु अभ्यास करे।

इस पूरी प्रक्रिया की संक्षिप्त रूप रेखा निम्न है-

१. चिकित्सक कार्य को पहले जोर से बोलते हुये दिखाता है। क्लाइट कार्य को करता है जबकि चिकित्सक उसे जोर से बोलने को कहता है। क्लाइट कार्य को जोर से बोलते हुये करता है।

२. आत्म- निर्देशात्मक प्रशिक्षण के अंतर्गत किसी कार्य को अनुक्रम में किया जाता है। इसमें क्लाइट किसी कार्य को प्रतिक्रिया को जो बतायेगा जो उससे कर लिया है। वे क्या कर रहे है (अगला), तथा एक निर्देश कि इसे अभी करे।

आत्म-निर्देशात्मक प्रशिक्षण की प्रभावशीलता

मिसेनबाम तथा गुडमैन (1971) नें बच्चों के ऊपर आत्म-निर्देशात्मक प्रशिक्षण का उपयोग किया। इसमें शोधकर्ता का उद्देश्य था कि यह जानना था कि क्या बच्चों को आत्म-निर्देश में प्रशिक्षित किया जा सकता है तथा क्या वे इसका उपयुक्त ढंग से अनुपालन कर सकता है। क्या आंतरिक संवाद में मजबूती होती है? क्या शाब्दिक मध्य स्वता का उपयोग उत्पाद तथा घटाव में किया जा सकता है, क्या प्रयोज्य आत्म-पुनर्वतन का उपयोग उपर्युक्त ढंग से कर सकते है। मिसेनबाम तथा गुडमैन ने आठ लडकियों तथा सात लडकों का चयन द्वितीय कक्षा के बच्चों में से किया। ये बच्चे व्यवहारात्मक समस्या से ग्रस्त थे तथा विद्यालय द्वारा किये गया बौद्धिक लब्धि मापन पर कम प्राप्तांक प्राप्त किये थे।

पॉच बच्चों को तीन चिकित्सकीय दशाओं में रखा गया। ये तीन चिकित्सकीय दशायें थी- संज्ञानात्मक प्रशिक्षण (आत्म-निर्देशात्मक प्रशिक्षण) अवधान नियंत्रण तथा मूल्यांकन व मापन नियंत्रण। प्रयोगात्मक स्थिति के अंतर्गत संज्ञानात्मक मॉडलिंग तथा आत्म-निर्देश का प्रच्छन्न अप्रच्छन्न अभ्यास को जारी रखा गया। प्रशिक्षण कार्यो के अंतर्गत साधारण सांवेगिक गति से लेकर समस्या समाधान कार्यो को रखा गया। कार्य की जटिलता को धीरे-धीरे बढ़ाया गया।

अवधान नियंत्रण के प्रयोज्यों को भी समान प्रयोगकर्ता ने समान समय दिया। उन्हें वही समान सामग्रियॉं दी गयी थी जो आत्म- निर्देश के प्रयोज्यों को दी गयी थी। इस समूह में व पहले के समूह में माह एक अन्तर यह था कि इसमें आत्म-निर्देश का प्रयोग नही किया गया था। सामाजिक पुनर्वलन दोनों समूहों में उपस्थिति था।

मापन-नियंत्रण में प्रयोज्यों को चिकित्सा से पूर्व, चिकित्सा के पश्चात तथा निरंतरता का मापन किया गया। इस अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि आवेगी बच्चों में शाब्दिक मध्यस्थता तथा आत्म-निर्देश का उपयोग करके उनके प्रदर्शन तथा व्यवहार को सुधारा जा सकता है ।

7.6 आत्म-प्रबंधन

आत्म-प्रबंधन का प्रारंभ में नैदानिक चिकित्सकों के द्वारा विकसित व अयोग किया गया। इस चिकित्सा का केन्द्र बिन्दु यह है कि व्यक्ति जिसे परिवर्तन की आवश्यकता होती है वह तब अधिक सफल हो सकता है वह परिवर्तन प्रक्रिया को नियंत्रित कर सकता है। जब व्यक्ति अपने परिवर्तन प्रक्रिया को की जिम्मेदारी खुद लेता है। तो यह अपने आपको अधिक योग्य महसूस करता है तथा यह परिवर्तन अधिक स्थायी होता है। आत्म- प्रबंधन से सावोगिक अंगों का जिनमें आत्म-मूल्यांकन, आत्म-विश्वास, चेतना तथा विश्वास, आत्म नियंत्रण तथा उपलब्धि , अभिप्रेरिक आदि को प्रभावित करता है। इसमें अंतदर्शन विधि का प्रयोग किया जाता है। आत्म-मूल्यांकन तथा आत्म-प्रबंधन तकनीक का प्रयोग किया जाता है जिससे व्यक्ति अपने व्यवहार तथा कार्य में सुधार ला सके।

इसका उपयोग आटिज्म, मधुमेह, अधिगम अक्षमता आदि में किया जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति व्यवसायिक सामाजिक जथा शैक्षिक तथा कार्यों में वृद्धि होती है।

आत्म-व्यवस्थापन के प्रकार -

आत्म-व्यवस्थापन के अंतर्गत कुछ भिन्न कार्य किया जाता है जिससे लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके। इसके अंतर्गत क्लाईट को कुछ कार्य करने होते हैं-

- भविष्य के बारे में सोचना जिसे वे प्राप्त करना चाहता है (जैसे- किसी प्रोजेक्ट में ग्रेड प्राप्त करना) ऐसे उपाय व परिस्थितियों के बारे में सोचना तथा निर्णय लेना।
- ऐसे स्थान का चुनाव करना या ऐसे लोगों के साथ रहना जिससे व्यक्ति अपना व्यवस्थापन स्वयं कर सके।
- ऐसे विद्यार्थियों के साथ रहना जो अच्छे ढंग से कार्य कर रहा है ।

परिस्थिति का सुधार करना

ऐसे परिस्थिति में सुधार करना जिससे बचा नहीं जा सकता। उदाहरण- कक्ष में ऐसे विद्यार्थियों के सामने की ओर न कि पीठ की तरफ बैठना।

- आत्म- प्रबंधन की रणनीतियाँ -
- संज्ञानात्मक रणनीति-
    - अपने ध्यान में परिवर्तन लाना
    - ऐसी परिस्थिति को देखना जो लक्ष्य पर ध्यान को बढ़वा देता है। उदाहरण- कक्षा में व्यवस्था को देखना।
- **परिस्थिति के या व्यक्ति के प्रति सोच बदलाव -**ध्यान भंग करने वाले परिस्थिति पर ध्यान न देना, गृहकार्य को एक कार्य न समझकर उसे सोचिये कि जब आप गृहकार्य पूर्ण कर लेते हैं तो आपको कितना अच्छा लगता है।
- **आवेग / संवेदन को दबाने की रणनीति-** इसका उपयोग करना बहुत मुश्किल होता है तथा यह कम प्रभावशील होता है तथा इसमें बहुत अधिक संज्ञानात्मक ऊर्जा की आवश्यकता होती है ।
- **आवेग को खत्म करना**- किसी अवांछित आवेग या संवेग को घटने के बाद खत्म करना। जैसे- सामने किसी अच्छे खाने को बार-बार खाने से रोकना।
- **वूप रणनीति** - वूप रणनीति जो कि सकारात्मक रणनीति है तथा इसमें वास्वविकता भी समाहित है चार चरणों में को समाहित करती है-
- **इच्छा-** क्लाइंट को ऐसी महत्वपूर्ण व प्राप्य इच्छा कहने को कहा जाता है जिसे वे पूरा करना चाहते हैं।
- **परिणाम-**क्लाइंट को यह कल्पना करने को कहा जाता है कि जब वे अपनी इच्छा पूरी कर लेंगे तो उनका भविष्य कैसा होगा।
- **अवरोध**-क्लाइंट को सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तिगत अवरोध के बारे में सोचने को कहा जाता है जो उनकी इच्छा की पूर्ति में बाधक होता है।
- **योजना**-क्लाइंट को एक प्रभावशाली व्यवहार के बताना होता है जिससे वे अवरोध को दूर कर सके तथा एक विशिष्ट योजना बना सके।

आत्म- प्रबंधन का इतिहास -

आत्म- प्रबंधन शब्द ब्रिटेन-अमेरिकन शोधों में प्रयुक्त होता है जिससे व्यक्ति अपने आत्म-नियंत्रण तथा आत्म-सम्मान को बढ़ा सकता हैं। यह दृष्टिकोण सामाजिक अधिगम सिद्धांत आत्म-नियंत्रण से संबंधित होता है। आत्म-प्रबंधन शब्द की उत्पत्ति दीर्घकालिक बीमारी तथा चिकत्सकीय देखभाल के साहित्य से हुई। 1976 में इस शब्द की उत्पत्ति थामस फिश की पुस्तक जो उन्होंने दीर्घकाल से बीमार चल रहे बच्चों के सुधार के लिये लिखी से हुयी। डिश्चियन के अनुसार आत्म- प्रबंधन की शुरूआत रोगियों को अपने उपचार में सक्रिय योगदान लेने के लिये की गयी। वर्तमान में आत्म-व्यवस्थापन कार्यक्रमों का अयोग दीर्घकालिक चिकित्सकीय स्थितियों जैसे गठिया, मघुमेह, हृदयरोग आदि रोगियों के लिये किया जाता है। आत्म- प्रबंधन चिकित्सा का उपयोग इस चिकित्सा विधि का उपयोग अस्थमा की देखभाल के लिये भी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

आत्म- प्रबंधन चिकित्सा के लाभ -

- लचीलापन -
- कम अनुपस्थिति
- उच्च समर्पण
- कम से कम निर्देश की आवश्यकता
- अधिक सअनुशासन
- उत्पादकता को बढ़ाव

दोष-

आत्म- प्रबंधन विधि का एक दोष यह है कि इसके द्वारा सामान्यीकृत परिणाम प्राप्त नहीं होते है।इस कारण इस विधि के ऊपर और अधिक शोध की आवश्यकता है । इस विधि का उपयोग अधिक जटिल समस्या वाले व्यक्तियों पर नहीं किया जा सकता है । इस विधि का उपयोगकेवल तात्कालिन समस्या के समाधान के लिये किया जाता है। इसका उपयोग दीर्घकालिक समस्या के समाधान के लिये नहीं किया जाता है।

7.7 समस्या-समाधान चिकित्सा

समस्या-समाधान चिकित्सा एक मनोसामाजिक चिकित्सा है, जो कि संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक हल के अंतर्गत आता है। इसके द्वारा बातों से लेकर बड़ी-बड़ी समस्याओं को दूर किया जाता है। इसके द्वारा जिससे व्यक्ति की मानसिक तथा स्वास्थ्य से संबंधित परेशानियों को दूर किया जा सके। इस चिकित्सा विधि के प्रमुख लक्ष्य निम्न लिखित हैं-

समायोजित व्यवहार के प्रति उन्नमुखता को बढ़ाना आशावादिता, सकारात्मक, आत्म-सामर्थ्यता, स्वीकारात्मकता तथा समस्या जो कि दैनिक जीवन से संबंधित हैं।

विशिष्ट समस्या- समाधान व्यवहार की प्रभावशाली उपयोगिता को बढ़ाना (संवेगात्मक नियंत्रण तथा व्यवस्थापन) संक्षेप में समस्या केंद्रित चिकित्सा उन व्यक्तियों पर उपयोगी होती है जो कि स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित होती है । जैसे-अवसाद, चिंता, संवेगात्मक, तनाव, आत्म-हत्या, कैंसर, हृदय से संबंधित बीमारी, मधुमेह, आघात, पीठ दर्द, अत्यधिक तनाव आदि ।

इसका उपयोग मनोविदलता तथा मानसिक मंदता से ग्रस्त लोगों पर किया जाता है। इसका प्रयोग कुछ निश्चित जनसंख्या पर जैसे-युद्ध क्षेत्र से वापस आने वाले व्यस्कों पर किया जाता है। समस्या केंद्रित चिकित्सा का उपयोग मनोचिकित्सा के रूप में भी किया जाता है तथा साथ ही प्रशिक्षण व्यवस्था के रूप में भी किया जाता है।

समस्या केद्रित चिकित्सा का संक्षिप्त इतिहास-

1971 में थामस डी जुरीला तथा मार्पिन गोल्डफ्राइड ने वास्तविक जीवन से संबंधित समस्याओं के शोध को प्रस्तुत किया है। यह इसका विषय क्षेत्र सृजनात्मकता असामान्य व्यवहार, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान शिक्षा तथा उद्योग से संबंधित व्यवहारवादी चिकित्सकों में एक संक्षिप्त मॉडल का निर्माण किया है इसमें दो तत्व समाहित है-

सामान्य उन्मुखता तथा समस्या समाधान योग्यता। सामान्य उन्मुखता से तात्पर्य अभिप्रेरणात्मक कार्यों से होता हैं। इसके द्वारा संज्ञानात्मक-संवेगात्मक जो कि अधिक स्थिर होती है जिससे व्यक्ति की समान्य जागरूकता तथा समस्या का मूल्यांकन किया जाता है। समस्या समाधान योग्यता से तातर्प्य संज्ञानात्मक-व्यवहारात्मक क्रियाकलापों से होता है।

समस्या - समाधान

हम वास्तविक समस्या समाधान जिसे सामाजिक समस्या समाधान भी कहते हैं । एक आत्म-निर्देशित प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति समस्या का समाधान की पहचान कर सकता है, खोज सकता है। समस्या ऐसी हो सकती हैं

जो दीर्घ तीव्र हो सकती है तथा जिसे वे दैनिक जीवन में देख सकते हैं। इसके विशिष्ट रूप में, इसके द्वारा व्यक्ति अपनी प्रतिरोध क्षमता की पहचान कर सकता

समस्या- हम साधारणतया समस्या को जीवन परिस्थिति के रूप में परिभाषित कर सकते हैं- नकारात्मक परिणामों सक बचने कि लिये समायोजी प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है (व्यवहारिक तथा संवेगात्मक समस्थिति को पुनः प्राप्त करना)

प्रभावशाली प्रतिक्रिया तात्कालिक नहीं प्राप्त होती है क्योंकि व्यक्ति के सामाजिक अथवा शारीरिक वातावरण से उत्पन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त ये आंतरिक अथवा अंतर्वयक्तिक (अधिक धन कमाने की इच्छा, लक्ष्य से उत्पन्न भांति, सामाजिक संबल के अभाव) के कारण भी उत्पन्न होते हैं।

समस्या में अनेक बातें सम्मिलित होती हैं। जिनके अंतर्गत आते हैं-

- नयापन (नये वातावरण की तरफ मुड़न)
- जटिलता (कैसे कोई रिश्ते का विकास हो रहा है को लेकर से मुक्ति)
- पूर्वानुमान का अभाव (अपने कैरिया लक्ष्य पर नियंत्रण का अभ्ररव)
- उदात्मक लक्ष्य (किस घर को खरीदना है, इसे लेकर विभिन्न विचार)
- प्रदर्शन योग्यता क्षमता में कमी (अपने साथियों के साथ संवाद क्षमता में कमी)
- संसाधनों का अभाव (सीमित आर्थिक क्षमता)

एक व्यक्ति समस्या को तुरंत पहचान सकता है अथवा अनेक बार प्रयत्न करके असफल हो जाने पर पहचान सकता है एक समस्या एक बार ही घटित हो सकती है समान घटनाओं का बार-बार घटना अपने बॉस से बार-बार अतार्किक माँगों का उठना अथवा कोई दीर्घकालिक परिस्थिति हो सकती है (लगातार दर्द अकेलापन अथवा चिकत्सकीय बीमारी)।

एक समस्या न केवल वातावरण की विशेषता होती है और न ही केवल व्यक्ति की। यह व्यक्ति-वातावरण के संबंध के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। इसमें परिस्थितियों की माँग तथा व्यक्ति की प्रतिरोध क्षमता में मतभेद होता है। अतः समस्या तटिलता के आधार पर बदल सकती है अथवा इसका महत्व बदल सकता है। मत व्यक्ति अथवा वातावरण अथवा दोनों से संबंधित होती है। यह संबंधात्मक परिदृश्य यह बताता है कि इसका समस्या-समाधान मूल्यांकन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। इसका अर्थ यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिये समस्या अलग-अलग हो सकती हैं। एक व्यक्ति के लिये एक समस्या हो सकती है। किसी एक समय पर एक व्यक्ति के लिये एक समस्या हो सकती है उसी समय वही समस्या दूसरे के लिये नहीं हो सकती हैं।

समाधान एक परिस्थिति-विशेष प्रतिरोध प्रतिक्रिया पर आधारित होती है जो कि समस्या-समाधान प्रतिक्रिया पर आधारित होती है जो कि विशिष्ट समस्या परिस्थिति पर आधारित होती है। एक प्रभावशाली समाधान यह हो जो कि समस्या समाधान लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता हैइसके साथ-साथ इसके द्वारा सकारात्मक परिणाम को बढ़ाया जाता है तथा नीरात्मक परिणामों कम किया जाता है। महत्वपूर्ण परिणामों में सम्मिलित होते हैं - स्वयं के अन्य के ऊपर प्रभाव पड़ते है तथा इसका दीर्घकालिक प्रभाव तथा लघु-कालीन परिणाम होता है। इस संदर्भ में इसे नोट किया जाना चाहिये कि किसी विशिष्ट समाधान की प्रभावशालीता प्रत्येक व्यक्ति के लिये भिन्न-भिन्न हो सकती है। यह समस्या-समाधानकर्ता के मानक मूल्य तथा लक्ष्य पर आधारित होती है। इसके अतिरिक्त यह समाधानकर्ता अथवा अन्य तहत्वपूर्ण व्यक्ति जो कि समाधान का मूल्यांकन करता है पर भी निर्भर करता है।

सामाजिक समस्या समाधान का मॉडल-

(1971) के मॉडल में संशोधन किया गया इसके अनुसार समस्या समाधान या उन्मुखता तथा समस्या -समाधान करने के तरीके पर आधारित होती है।

समस्या उन्मुखता -समस्या उन्मुखता स्थिर संज्ञानात्मक भावात्मक स्कीमों पर आधारित होती है। इसके द्वारा व्यक्ति के सामान्यीकृत विचार, अभिवृत्तियाँ तथा समस्या के प्रति संवेगात्मक प्रतिक्रियायें आती हैं। समस्या उन्मुखता दो प्रकार होती हैं-

- सकारात्मक उन्मुखता के अंतर्गत निम्न प्रवृत्तियाँ आती हैं- समस्या को एक चुनौती के रूप् में मूल्यांकित करना। यह विश्वास करना कि समस्या का समाधान संभव है अपनी स्वयं की योग्यता पर विश्वास करना कि वह समस्या का समाधान कर सकते है। सफलतापूर्वक तरीके से समस्या समाधान करने में समय तथा मेहनत लगती है। ऐसा सोचना कि नकारात्मक संवेग संपूर्ण समस्या-समाधान प्रक्रिया का आवश्यक अंश है जिससे कि समस्या का समाधान हो सके।

- नकारात्मक समस्या उन्मुखता के अंतर्गत निम्न तीन प्रवृतियाँ आती है-
    - समस्या को डर के रूप में देखने पर समस्या का समाधान होने की उम्मीद न करना।
    - नकारात्मक संवेगों का सामना करने पर बुरा लगना।
    - एक व्यक्ति की अपनी अभिप्रेरणा व्यक्ति की उन्मुखता पर प्रभाव डालती है तथा समस्या समाधान की योग्यता का भी इस पर प्रभाव पड़ता है।

समस्या-समाधान के तरीके- इसके अंतर्गत वे सभी तरीके आते हैं जो समस्या समाधान के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं। यह संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शोध के अनुसार तीन तरह के तरीकों का पता चलता है-

- तार्किक समस्या समाधान जिसे योजना पूर्ण समस्या समाधान कहते हैं।
- परिहार समस्या समाधान
- आवेगी-लापरवाही समस्या समाधान

तार्किक अथवा योजनापूर्ण समस्या समाधान एक संरचनात्मक उपागम है जिससे तनावपूर्ण समस्याओं का समाधान ठीक तरीके से किया जा सकता है।

इसमें क्रमबद्ध तथा विचारयुक्त तरीके से निम्न योग्यताओं का उपयोग किया जाता है-

समस्या परिभाषा- इसमें समस्या की प्रकृति को बताया जाता है, वास्तविक समस्या समाधान लक्ष्य को प्राप्त किया जाता है तथा उन सभी बाधाओं की पहचान की जाती है जो व्यक्ति को लक्ष्य तक पहुँचने से रोकती हैं।

विकल्पों का निर्माण- पहचान ने जानने योग्य समस्त बाधाओं के संभावित समाधान के विकल्पों की पहचान करना

न्याय का निर्माण - इन सभी विकल्पों के परिणामों का पूर्व कथन करना, पहचान योग्य परिणामों के आधार पर लागत -लाभ व्याख्या की जाती है। तथा ऐसी समाधान योजना बनान जिससे कि लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।

समाधान उपयोगिता तथा जाँच -समाधान याजना को बनाना परिणाम की देखभाल तथा क्या व्यक्ति के समस्या-समाधान के प्रयास सफल हुये हैं अथवा इन्हें जारी रखने की आवश्यकता है, तार्किक समस्या समाधान को गलत तरीके से बराबर समझा जाता है।

आवेगी /लापरवाह तरीके से समस्या-समाधान करने के तरीके में व्यक्ति आवेगी अथवा लापरवाह तरीके में समाधान कर सकता है। ऐसे प्रयास संकुचित होते हैं, जल्दी में किये जाते है अथवा अपूर्ण होते हैं इसमें व्यक्ति विभिन्न विकल्पों का चयन करता है। इसके अतिरिक्त वह विभिन्न विकल्पों में से ज्यादातर पहले विचार का ही चयन किया जाता है। इसके अतिरिक्त वह विभिन्न उपलब्ध समाधानों को तुरंत लापरवाह तरीके से तथा अक्रमबद्ध तरीके से निरीक्षण करता है।

परिहार उपागम एक अन्य कुसमायोजन समस्या-समाधान प्रक्रिया है जिसे अक्रिया तथा दूसरो पर विर्मश के रूप में देखा जा सकता है। इस तरह का समाधान कर्ता समस्या से बचना चाहता है।

समस्या-समाधान चिकित्सा (चिकित्सकीय उद्देश्य)

- सकारात्मक समस्या उन्मुखता को बढ़ाना
- नकारात्मक समस्या उन्मुखता को घटाना

- याजनाबद्ध समस्या समाधान को बढ़ाना
- परिहार समस्या समाधान को कम करना
- आवेगी / लापरवाह समस्या समाधान को कम करना।

समस्या-समाधान चिकित्सा

चिकित्सा के तत्व

व्यक्ति जब इन चिकत्सकीय लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है तो उसे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। असके अंतर्गत निम्न तथ्य आते हैं । संज्ञानात्मक भारीपन खासकर तब जब व्यक्ति तनाव में हो प्रभावशाली संवेगात्मक नियमन में व्यस्त रहने के लिये कम योग्यता।

संवेग- संबंधी सूचनाओं के प्रति पक्षपात पूर्ण संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं उदाहरण नकारात्मक स्वायत्त विचार, सीमित आत्म-सामर्थ्य विश्वास नकारात्मक स्मृति से निकलने में असमर्थता, आशावादिता के कम होने के कारण सीमित अभिप्रेरणा

अप्रभावशाली समस्या-समाधान

इन सभी लक्ष्यों की प्राप्ति करने के लिये समस्या-समाधान चिकित्सा क्लाइंट को चार मुख्य समस्या -समाधान के साथ तरीकों को बताती है।

ये चार प्रक्रियायें निम्न है- समस्या-समाधान के साथ अनेक कार्य रूकना, धीमा होना, सोचना तथा कार्य करना (SSTA) DS द्वारा समस्या का समाधान करना।

स्वस्थ चिंतन तथा कल्पना योजनाबद्ध समस्या-समाधान

7.8 सारांश-

समस्या-समाधान केंद्रित चिकित्सा एक मनोसामाजिक चिकित्सा है जिसका मुख्य लक्ष्य जीवन के तनाव कासामना करना होता है जिसका स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित दिक्कतों तथा भविष्य की दिक्कतों से बचा जा सके। समय-समय पर इस चिकित्सा विधि में संशोधन किया जाता रहा है। मूल सिद्धांत D z will and Goldenrod (1971) द्वारा दिया गया था परंतु इसमें अनेक सुधार हुये इसके द्वारा व्यापक पैमाने पर नैदानिक जनसंख्या तथा समस्या का उपचार किया जाता है। इस मूल सिद्धांत का प्रयोग मनोविज्ञान तथा तंत्रिकाशास्त्र में किया जाता है । नवीन सिद्धांत में दो मुख्य विमाओं को जोड़ा गया समस्या उन्मुखता व्यक्ति का सामान्यीकृत विश्वास अभिवृत्ति तथा समस्या के प्रति (संवेगात्मक तथा व्यवहारात्मक प्रक्रिया में) शोध के अनुसार दो

उन्मुखतायें प्राप्त हुयी। संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा सुधार चिकित्सा नकारात्मक को सकारात्मकता में बदलने का प्रयास है । तनाव संरोपण प्रशिक्षण का उपयोग अभिवृत्ति परिवर्तन के लिये चिकित्सा तथा सामाजिक मनोवैज्ञानिक शोधों में किया जाता है। आत्म निर्देशात्मक प्रशिक्षण एक साक्ष्य आधारित चिकित्सकीय रणनीति है जिसका उपयोग संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के रूप में किया जाता है । आत्म प्रबन्धन का दृष्टिकोण अधिगम सिद्धांत , आत्म नियेत्तरा से संबंधित है। समस्या समाधान चिकित्सा बडी -बडी समस्याओं को किया जाता है जिसके ्रारा किया जाता है जिसके द्वारा उसकी मानसिक व शारीरिक स्वास्थय से संबधित परेशानी को दूर किया जाता है।

7.9 शब्दावली

संरोपण - संरोपण का उपयोग अभिवृत्ति परिवर्तन के लिये चिकित्सा तथा सामाजिक मनोवैज्ञानिक शोधों में किया जाता है।

तनाव संरोपण प्रशिक्षण - तनाव संरोपण प्रशिक्षण संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा का बहुमुखी रूप है। इसके द्वारा तनाव से ग्रस्त लोगों के लिये नैदानिक नियमावली प्रदान की जाती है।

आत्म-निर्देशात्मक प्रशिक्षण- आत्म-निर्देशात्मक प्रशिक्षण एक साक्ष्य आधारित चिकित्सकीय रणनीति है जिसका उपयोग प्रायः संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक चिकित्सा के अंग के रूप में किया जाता है।

आत्म-व्यवस्थापन प्रशिक्षण-आत्म-व्यवस्थापन प्रशिक्षण वह प्रशिक्षण है जिसमें व्यक्ति जिसमें परिवर्तन की आवश्यकता होती है। वह तब सफल हो सकता है जब वह परिवर्तन को नियंत्रित कर सकता है।

समस्या समाधान चिकित्सा-समस्या-समाधान चिकित्सा एक मनोसामाजिक चिकित्सा है जिसमें बडी -बडी समस्याओं को दूर किया जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति की मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित परेशानियों को दूर किया जा सकता है।

7.10 प्रश्नावली

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये -

1. ....का उपयोग अभिवृत्ति परिवर्तन के लिये चिकित्सा तथा सामाजिक-मनोवैज्ञानिक शोधों में किया जाता है।
2. तनाव संरोपण प्रशिक्षण सिद्धांत ....द्वारा किये गये तनाव तथा प्रतिरोध क्षमता के संयोजन के दृष्टिकोण पर आधारित है।

3. ....एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति का आत्म नियंत्रण शाब्दिक कथनों से किया जाता है।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. संज्ञानात्मक व्यवहार संशोधन चिकित्सा क्या है ?आत्म निर्देशात्मक प्रशिक्षण का वर्णन कीजिये।
2. तनाव संरोपण प्रशिक्षण की व्याख्या कीजिये

7.11 संदर्भ -ग्रंथ सूची

1. Cognitive –Behavior Modification: Application with exceptional students (1982). Karen, Harris. Focus on Exceptional Children.
2. Stress Inoculation Training: A Preventaive and Treatment approach. Danial Meichenbaum.
3. Application of Social learning theory to employee self-management of attendance. Frajne, C.A. & Latham, G.P. (1987). Journal of Applied Psychology,72(3), 387-393.
4. Cory, G. (2005). Theory and Practice of Counseling and Psychotherapy (7th ed). Belmont.